ओं

शिवसतसई.

रचयिता

साहित्योपाध्याय शिवदत्त काव्यतीर्थ

अध्यापक गवर्नमेन्ट हाइस्कूल अजमेर.

श्रीहरिश्चन्द्र त्रिवेदी प्रबन्धकर्त्ता के प्रबन्ध से

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित.

प्रथमावृत्ति } विक्रम संवत १९६९ { मूल्य

१००० } ईस्वी सन् १९१२ { प्रतिपुस्तक ।)

समर्पण.

विविधविद्याविशारद, सद्गुणागार, मान्यवर श्रीमान् ई. एफ. हैरिस महोदय (बी० ए०) प्रिंसिपल गवर्नमेन्ट कॉलेज अजमेर व अजमेर मेरवाड़ा प्रान्त की पाठशालाओं के इन्स्पैक्टर महाशय की उदार अनुमति पाकर इस छोटीसी पुस्तक को श्रद्धापूर्वक उनके कर-कमलों में सादर समर्पित करता हूं.

शिवदत्त त्रिपाठी.

॥ श्रीः ॥

भूमिका.

हर्ष का विषय है कि आज कल राजा और प्रजा सब ही का लक्ष्य सर्वसाधारण को विद्या पढ़ा कर देशभाषा की उन्नति करने का है अतएव उसी आशय को हृदय में धार, सर्वसामान्य के हितार्थ शार्ङ्गधरपद्धति, सुभाषितरत्नभाण्डागार, सुभाषितावलि, सनातनधर्मसंग्रह और गुमानिकविकृत उपदेशशतक इत्यादि के आधारपर सारगर्भित संस्कृत श्लोकों के साधारण दोहे बनाकर श्री रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों के शिक्षाप्रद इतिहासों का टिप्पणी में संकेत देकर तथा साहित्यरत्नाकरादि भाषा ग्रन्थों में से कहीं २ प्राचीन कवियों के कवित्तों को संयोजित करके, यह एक छोटीसी पुस्तक बनाई है, सो आशा है कि पण्डितजन इसका अवलोकन कर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे और जो कहीं इसमें त्रुटि रहगई हो, उसको अपने उदाराशय से सुधारकर अपने महत्व का परिचय देते हुए मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करेंगे.

महाशयो ! आज कल कितनेक सज्जन तो शुद्ध संस्कृत प्रयोगों के पक्षपाती हैं और कितनेक अन्यान्य मिश्रित भाषाओं के. उनमें से एक ही भाषा का सहारा लेना ठीक जान उसी चाल से रचना की है, जिसके कारण यदि कुछ कठिनता दिखाई पड़े तो उसे क्षमा करेंगे । कारण जैसा दोष कठिनता का है वैसा ही दोष अन्य भाषाओं के शब्दों के प्रयोग करने का भी तो है.

अब मैं राजपूताना म्यूज़ियम के सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीमान् पंडित गौरीशङ्करजी ओझा तथा जोधपुर महाराजाश्रित पंडितवर रामकर्णजी आसोपा, तथैव विविधभाषाविशारद, पारसीक वंशोद्भव, श्रीयुत मेहरजी बी. डी. को धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने इस पुस्तक के संशोधन में मुझे सहायता प्रदान की. तथैव रावसाहब पंडित नृसिंहदासजी लेट हेडमास्टर लोवरकालेज अजमेर व अजमेर मेरवाड़ा की पाठशालाओं के डिप्टी इन्स्पेक्टर मनीषी रामधनजी व गवर्मेण्ट कालेज के हेडक्लर्क बाबू छोगालालजी को अनेक धन्यवाद हैं कि जिन्होंने पुस्तक प्रदानादि द्वारा सहायता देकर मेरे उत्साहांकुर को सींचकर प्रफुल्लित किया. किंबहुना किमधिकम् ॥

चलत चलत यदि पान्थ का, पैर विषम पड़ जाय ।
तो सज्जन ढावें तुरत, अरु खल तालि बजाय ॥

संवत् १९६९ श्रावण वदि ९ बुधवार. } शिवदत्तशर्म्मा दाधीच.

ॐ

॥ श्रीदधिमथ्यै नमः ॥

अथ शिवसतसई प्रारभ्यते.

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥

ऋद्धि सिद्धि के बीच में, राजमान गणराज ।
प्रणति मोरि स्वीकार करि, सफल करो सब काज ॥
उत्पति, थिति, अरु प्रलय है, जग को जिसके हाथ ।
उसके चरणों में धरूं, बार बार निजमाथ ॥
गुरु को करूं प्रणाम पुनि, जिनने दया विचार ।
हित शिक्षा द्वारा कियो, मेरो बहुत सुधार ॥

दोहे.

अक्षयवट सद्धर्म की, छाया में विश्राम ।
करनेवारे अमितसुख, पावें आठों याम ॥

अखिल विश्व का अन्न, धन *, युवतिवृन्द अरु राज ।
भोग सकै नहिं एकला, अस विचारि कर काज ॥

अग्नि, विप्र, राजा, जलधि, मृत्यु, पेट अरु धाम ।
ये सातों धापें नहीं, किये सहस्रों काम ॥

अतिथिनके उपकार हित, सज्जन अरु तरुराज ।
सरदी गरमी भोगकर, करैं सकल के काज ॥

अति परिचयतें भक्ति की, अवशि होत है हान ।
जैसे लोग प्रयाग के, करैं कूप पै स्नान ॥

अनहोनी होवै नहीं, होनी हो सो होय ।
अस ज्ञानौषधि पान करि, बुध दुख देवै खोय ॥

अन्न, घास अरु नीर को, संग्रह राखै जौन ।
प्रजाकष्ट दुर्भिच्छ में, मेटि सकै नृप तौन ।

अन्नदान सम दान नहिं, तप नहिं सत्य समान ॥
गायत्री सम मंत्र नहिं, कहत पुकारि पुरान ।

अनुचित कारज में नहीं, दीजिय कौड़ी एक ।
और उचित में देह भी, तजिके रखिये टेक ॥

अपने पुण्यों का करै, जो कोइ आप बखान ।
वह ययाति † सम उच्चपद, पाकरि गिरै निदान ॥

---

* जेते मणिमाणक, ते तू जोड़े मति माणक को, धरा में धर्‍यो है, सो तो धर्‍यो ही रह जायगो । देह देह देह, फिर पावैगो न ऐसी देह, न जाने यह जीव फिर कौन योनि पायगो । भूषण भनंत, भूख राखै मति भूषण की, यही भूख राख, भूखन खवायगो । आवेगो यमगण न गणन देगो गणा, नगन चलैगो संग और नगन ही चलायगो ।

† राजा ययाति अपने तपोबल से इन्द्रपद पाने के लिये देहसमेत जब

अपना प्रण नहिं छोड़िये, जब लों घट में प्राण ।
देख कर्ण * के चरित को, कहत पुकारि पुराण ॥
अपना मुख भी काच बिन, जब देखा नहिं जाय ।
तब ईश्वर का ज्ञान बिन, कैसे दर्शन पाय ॥
अपने अपने समय में, सभी बड़ाई पाय ।
जैसे सूरज के छिपे, दीपक आघ कराय ॥
अभिमुख सुख जिमि मन हरै, तिमि गतसुख नहिं भाय ।
जस चंद्रोदय सांझ को, तस नहिं प्रात सुहाय ॥

स्वर्गलोक को गया । तब इन्द्र ने बड़े आदर से इनको सिंहासन पर बिठाया और कहा कि आपने क्या २ पुण्य किये हैं, कि जिससे मेरा पद मिला । इस पर राजाने अहंकार में आकर ज्यों २ पुण्य गिनाना आरंभ किया त्यों त्यों उसका तप घटने लगा अंत में जब स्वर्ग के योग्य तप का फल नहीं रहा तब इन्द्र की आज्ञा से देवताओं ने फिर उसे मृत्युलोक में उतार दिया ।

* राजा कर्ण ऐसा दानी था कि घर आये अतिथि को कभी विमुख नहीं जाने देता था । महा भारत के युद्ध में जब वह घायल होकर पड़ा तब उसे देख अर्जुन के मन में इतना गर्व आया कि मेरे समान कौन होगा कि जिसने कर्ण जैसे शूर को मारकर जयश्री प्राप्त की । भगवान् तो अन्तर्यामी थे. झट समझ गये और बोले कि हे अर्जुन ! यदि तुझे अब भी कर्ण का महत्त्व देखना हो तो मेरे साथ चल । इस प्रकार कह दोनों ब्राह्मण के वेश में राजा के पास जाकर बोले कि हे राजन् ! कन्या का विवाह करना है कुछ धन दे । इतने वचन सुनते ही आंख खोल उसने संकेत किया कि "स्त्री" अर्थात स्त्री के पास जाओ । इस पर वे बोले कि आप यहां ही दीजिये । तब राजा अपने मुंह में का सुवर्ण निकाल कर देने लगा । इस पर वे बोले कि हम उच्छिष्ट नहीं लेते । तब रिगस्ता २ बड़ी कठिनता से शुद्ध कर याचकों के समर्पण किया । फिर भगवान् ने प्रसन्न हो उसके प्रण की तो बड़ी प्रशंसा की और अंत समय में निजस्वरूप का दर्शन दे कृतार्थ किया ॥

अमृत मय संतोष को, जिसने चख्यो मिठास ।
उसको तो फीकी लगै, क्षुद्र धनिक की आस ॥
अर्थ बहुत अक्षर अलप, ऐसी कीजे बात ।
नातरु चुप रहनो भलो, स्मृति अस भेद बतात ॥
अर्थ बढ़ावै धर्म को, धर्महिं अर्थ बढ़ाय ।
जलधि जलद सम्बन्धसम, इकको एक सहाय ॥
अवनति अरु उन्नति सदा, रहत आप के पास ।
कूप खोदि नीचो धसै, मठ रचि चढ़ै अकास ॥
अशन, पठन, पाठन, शयन, मलत्याग अरु वाद ।
तजिये सन्ध्या समय में, अवशि पालि मर्याद ॥
आई मोत टरै नहीं, प्राण लिये बिन भाय ।
देखु परीक्षित * नहिं बच्यो, करिके विविध उपाय ॥
आकदूध में ढाक के, बीज बांटि यदि तात ।
लेप करे तो बिच्छु को, विष हलको होजात ॥
आगे की नहिं पूछिये, खोटी चोखी बात ।
जनमेजय † ने प्रश्नकरि, कहँ पाई कुशलात ॥

* शृंगी ऋषि के शाप से बचने को राजा परीक्षित गंगातट पर एक सुरक्षित स्थान में बैठकर ऋषियों से धर्म्मोपदेश सुनने लग गया था । पर वहां भी पुष्पमाला के साथ कीड़े के स्वरूप में तक्षक पहुंच गया और राजा को डस-कर शाप का नियम पूर्ण किया ॥

† राजा जनमेजय ने अपना भावी वृत्तान्त (जो कि भला नहीं था) व्यासजी से सुना और बार बार सोचकर के पछताने लगा । अतः भावी वृत्तान्त को किसी से पूछना नहीं चाहिये और कदाचित् पूछ भी लिया तो उसका अधिक सोच नहीं करना चाहिये ॥

आज काम कर कल्ह को, सन्ध्या को कर प्रात ।
पूरो कारज कान को, मृत्यु न छिन ठहरात ॥
आंठ के सम सहज में, पीस्यो जाय पखाण ।
अरु बाछ निकसे तभी, दच्छिण से जल जाण ॥
आत्मा को वासि तीर्थ पै, अवशि कीजिये शुद्ध ।
क्योंकि वहां होवै कभी, यह च्छण मांहि प्रबुद्ध ॥
आत्मा को बसि तीर्थ पै, शुद्ध कीजिये तात ।
क्योंकि वहां सत्संग की, नदी बहत दिनरात ॥
आत्मा को यदि दुःख से, आत्मा नहीं छुड़ाय ।
तो दूजे के क्या अड़े, स्मृति अस भेद बताय ॥
आदर से फूले नहीं, खिजै न परिभव पाय ।
ये गुण जिसमें होय वह, सच्चा साधु कहाय ॥
आधो काम न छोड़ते, वीर दृढ़व्रत धार ।
जीति राजकुल पुनि तज्यो, परशुराम * संसार ॥

* आश्रमवासी यमदग्नि महर्षि को कामधेनु के लोभ से सहस्रबाहुराजा ने मारडाला था । जब यह वृत्तान्त उनके पुत्र परशुरामजी ने सुना तो उन्होंने अनर्थियों के दल सहित अपने पितृहन्ता को मार अपना क्रोध बुझाया । इस पर बहुत से हैहयवंशी राजाओं ने पक्ष करके वृथा ही लड़ाई ठानी तो वे भी इनके हाथ से मारेगये । फिर तो क्षत्रियों के साथ उनका इतना वैमनस्य बढ़गया था कि इन्होंने २१ वार समस्त भारतवर्ष में ढिंढोरा पिटवा दिया था कि मेरे सामने कोई भी क्षत्रियता का अहंकार न करे सो ऐसा ही हुआ कि उस समय क्षत्रियता का अंहकार त्याग दीनता धारकर जो चुपचाप रहे वे तो बचगये और जिन्होंने उद्धत बनकर लड़ाई ठानी वे उनके हाथ से मारे गये ॥

आम काटि बंबूलको, सींचै जो चित लाय ।
वो अज्ञानी अंत में, क्योंकर दुख नहिं पाय ॥
आप करै आत्मा करम, आप तासु फल पाय ।
आप फिरै संसार में, आप मोक्ष को जाय ॥
आमरछाया, सस्यनव, नीचप्रीति, परनारि ।
धन, यौवन अरु राज को, ठाठ बाठ दिन चारि ॥
आयु और धनधान्यसुख, यदि अन्यायी पाय ।
तो निश्चय मन में लखो, यहै घुणाक्षर * न्याय ॥
आलस, मैथुन, कलह, मद, अशन, नींद अरु खाज ।
ज्यों सेवो त्यों हीं बढ़ें, ये सातों महाराज ॥
आशा ही के आसरै, करत मनुज सब काम ।
पै जिसको आशा नहीं, वह है मृतकसमान ॥
आस छोड़ परवित्त की, दया हृदय में धार ।
जान ईश को सर्वगत, यही मार्ग श्रुतिसार ॥
आसन, धरणी, उदक अरु, चौथी मीठी बात ।
ये गुण सज्जनगेह को, तजि के कभी न जात ॥
आसा का जो दास है, वो सब ही का दास ।
जिसकी दासी आस है, उसके सब सुख पास ॥
इकलो वन में विचर मत, विचरे होवै हान ।
गति प्रसेन † की देख ले, कहत पुकारि पुरान ॥

* काठ में जो घुण लगजाता है सो वह रातदिन उसे कुतरता रहता है, कुतरते २ अन्त में उस काठ में जो अनायास कोई न कोई अक्षर सा चिन्ह बनजाता है उसको न्यायशास्त्री लोग घुणाक्षरन्याय कहते हैं ॥

† एक समय प्रसेन यादव घोड़ेपर चढ़ अकेला ही आखेट खेलने

इच्छा दुर्लभ वस्तु की, कबहुं न कीजे भाय ।
कौशिक धेनु वशिष्ठ की, पाइ न किये उपाय * ॥
इन्द्रसभा में एक कवि, अरु इक गुरु है तात ।
पै इस मगद्दल में सभी, कवि अरु गुरु दिखरात ॥
इत्र, फूल, फल, दूध, जल, तक्र और ताम्बूल ।
इन्हें लेय पुनि वर्तिये, करै सु विधिअनुकूल ॥
ईर्षी पावै आपदा, कहैं शास्त्र सब मान ।
धृष्टबुद्धि † के चरित में, भारत करै बखान ॥

को अचानक जंगल में जा पहुँचा । वहाँ एक सिंह दैवयोग आगया, जिसने दोनों ही के प्राण ले लिये.

* विश्वामित्रजी जब राजा थे तब वनविहार करते २ एक समय वशिष्ठजी के आश्रम में जा पहुँचे । ऋषिवर ने कामधेनु के प्रभाव से राजा का बड़ा ही सत्कार किया. परन्तु जब राजा विदा होने लगे तो लोभवश हो कामधेनु को भी साथ लेजाने लगे, इसपर उनका आपस में घोर युद्ध हुआ, अन्त में जब ऋषि को जीत न सके तो हार मान अपनी राजधानी को लौटे.

† चन्द्रहास का पिता बाल्यावस्था ही में मरगया था, अतः उसकी राजधानी का सब काम राजमंत्री धृष्टबुद्धि ही करता था, एकबार मन्त्री का भेद जानकर चतुर रानी ने अपने पुत्र को पिता के घर भेजदिया, जब राजपुत्र बड़ा होकर घर आया तो मन्त्री ने उदास हो, उसे मारने का एक कौ-शलिक पत्र लिख अपने पुत्र के पास भेज दिया. ईश्वरेच्छा से लड़के से पहिले लड़की से उसकी भेंट हुई, तो लड़की ने पत्र खोल विष के स्थान में विषया लिख पीछा वही पत्र राजकुमार को दे दिया । फिर जब कुमार ने मंत्री के पुत्र को पत्र दिखाया तो उसने तुरन्त ही पिता की आज्ञा मान धूमधाम के साथ अपनी बहिन विषया के साथ उसका विवाह कर दिया । उड़ते २ ये समाचार जब धृष्टबुद्धि के पास पहुँचे तो वह अत्यन्त उदास हो पछताने लगा पर क्या हो मनुष्य के विचार धरे ही रह जाते हैं, ईश्वर जो चाहता है वही काम होके रहता है.

ईश्वर को जो सृष्टि का, कर्ता माने नांय।
वो देवी अरु देव को, क्योंकर शीस नवाँय ॥
उच्चवंश में जन्म ले, सुजन व्यजनसम आप।
पर कारज में घूम कर, हरै सकल के ताप ॥
उठि प्रभात सुमिरण करो, नारायण को नाम।
त्रिविध ताप जिससे मिटें, और बनें सब काम ॥
उड़ी नांहि जाकी ध्वजा, वंशशिखर को पाय।
वाको जीवन अरु मरण, जग में गिन्यो न जाय ॥
उत्तम कारज में रहै, विघ्नों का समुदाय।
ईशकृपाअवलम्ब लो, तब तुम सको नसाय ॥
उठके ब्राह्ममुहूर्त्त में, जब सरसिजछविपाय।
तब नरनारी कान्ति को, क्यों नहिं पावत भाय ॥
उत्तम पद को पाय के, जो मदान्ध हो जाय।
वो अवश्य नृप नहुषसम*, गिर कर पुनि पछिताय ॥

* एक समय देवताओं ने इन्द्र की अनुपस्थिति में नहुष को स्वर्ग का राजा बनाया। वह थोड़े ही समय के अनन्तर राजलक्ष्मी से ऐसा उन्मत्त हो गया कि दूती द्वारा इन्द्राणी से कहलाया कि जब मैं इन्द्रपद पर हूं तो मेरी सेवा में इन्द्राणी का होना भी अत्यावश्यक है। इसपर इन्द्राणी ने उत्तर दिलाया कि बहुत अच्छा पर आप पहिले सप्तर्षियों को पालकी में जोड़िये और उसपर बैठकर मेरे घर पधारिये, राजा ने तुरन्त ऋषियों को बुलाया. फिर उन्हें पालकी में जोता और उसमें बैठ उसने प्रस्थान किया। कुछ दूर जाकर राजा ने त्वरा से ऋषियों को कहा कि सर्प सर्प अर्थात् चलो चलो। इसपर अगस्त्य ऋषि ने क्रुद्ध हो शाप दिया कि तू ही सर्प होजा। फिर तो राजा बहुत पछताया पर क्या हो कुकर्म का फल तो भोगना ही पड़ा.

उत्तम के संसर्ग तें, मिले बड़प्पन भाय ।
देखु कमल पे सलिलकण, मोतीसम झलकाय ॥
उत्तम के संसर्ग तें, सहज बड़ाई आय ।
जैसे सून प्रसून सँग, नृपशिरसम थल पाय ॥
उत्तम गुण को लीजिये, कथन सभी का मान ।
दत्तात्रेय ※ चुबीस गुरु, करके पायो ज्ञान ॥
उदय चहै सो प्रथम ही, करै तमोगुण नाश ।
जैसे रवि तमको निदरि, पीछे करत प्रकाश ॥
उद्यम, साहस, धीरता, बुद्धि, शक्ति अरु नीत ।
ये गुण हों तब ही पुरुष, निश्चय पावै जीत ॥
उपकारी विश्वस्त का, जो कोइ करै बिगार ।
उनको भार न सहिसकौं, पृथ्वी कहत पुकार ॥
उपकृति कर कहते नहीं, गुप्त देत रहँ दान ।
विचलित होय न विपति में, वे नर तीर्थसमान ॥
उपजे मानरु क्रोध † को, जो कोई लवै रोक ।
वह संपति को पात्र बनि, मेटि सकै सब शोक ॥

※ एक दिन कोई लोहार बाण बनाने में ऐसा तन्मय हो रहा था कि पास होकर राजा की सेना चली गई तो भी उसका चित्त विचलित नहीं हुआ। संयोगवश वहां गुरु दत्तात्रेयजी भी आ पहुंचे। उन्होंने बाण बनाने वाले से राजा के जाने का वृत्तान्त पूछा, उसने कहा कि महाराज! मुझे कुछ ठीक नहीं मेरा चित्त तो मेरे काम में लग रहा था। इस बात पर दत्तात्रेयजी ने उसकी एकाग्रता की तो बड़ाई की और यह गुण उससे सीख उसको भी एक प्रकार का गुरु माना.

† पत्थर सो बोल कहूं डारिये न काहूपै, डारिये तो धीरे से लपेट के डारिये.

उपराड़ेलें जाय मत, घर अरु पुर के मांहिं ।
तथा रात को वृक्षतल, कबहूं सोइय नांहिं ॥
उपदेशक सच्चा वही, जो करके दिखलाय ।
नातरु वाले तो अधिक, गायक चित हरपाय ॥
उल्लू दिन में अन्ध अरु, काक रात में अन्ध ।
पै कामी के नेत्र पै, रात दिवस ही बन्ध ॥
ऊपर पाथर फेंकि के, शिर का करने सोच ।
पंडित ऐसी बुद्धि को, समुझत हैं अतिपोच ॥
ऊंचे पदधारेन को, होय न पर दुखज्ञान ।
जिमि गिरिशिखर चढ़्यो कहै, जल थल एक समान ॥
ऊंडो जल मोमें बहुत, कूपछोड़ अस सोच ।
तू तो गुणग्राहक बड़ो, को समुझै नोहि पोच ॥
ऋतु पै श्वेत कँटालिको, दुखग्राहिन सो लेय ।
तो प्रभु की शुभदृष्टि से, पुत्र अवशि जन देय ॥
ऋपिजन के यदि मार्ग पै, शीघ्र चल्यो नहिं जाय ।
तो धीरे धीरे चलो, स्मृति पुराण अस गाय ॥
एक ओर व्याधा फिरै, सारमेय इक ओर ।
मैं ग्याभिन हरिणी कहां, जाकर पाऊं ठौर ॥
एक तुला शतयज्ञफल, एक तुला में सांच ।
सत्य बड़ो है यज्ञ नहिं, देख लेउ श्रुति बांच ॥

मुजरें बिगारिये न चित्तें बिसारिये न, महारोष भयो तोऊ मनमांहीं मारिये ॥
एक बारही मे दूर खोयो नहिं जात कहूं, धीरे धीरे करके काम सब ही सुधारिये ।
राजनीति राज के वजीरन को जसूराम, गुड़ ही तें मरे, वाकूं विष दे नाहिं मारिये ॥

एक निमिष को रत्नसम, गिनकर ज्ञानी लोग ।
रातदिवस हरिभजन कर, नासत हैं भवरोग ॥
एक भाग संग्रह करै, एक भाग को खाय ।
अरु इक भाग सुकर्म में, व्यय करि नर सुख पाय ॥
एक भीष्म मारुति अपर, इन दोनों को छोड़ ।
कहु किसके दृढ़ नियम को, स्त्री ने दिये न तोड़ ॥
अँगूठे का मध्य यदि, यव से अंकित होय ।
तो सुख पावत अवशि नर, इमि भाषत सब कोय ॥
ओम् तथा अथ शब्द को, मंगलकारक जान ।
पुस्तक के आरम्भ में, दीजिय पहले थान ॥
कछुवेसम निजअंग पै, सहिये शत्रुप्रहार ।
समय आय तब सर्पसम, दीजे फण फटकार ॥
कटुवाणी सुनि जो चतुर, करत शीघ्र परिहार ।
सो ध्रुव * सम पावै विभव, कहत पुराण पुकार ॥
कठिन काम नहिं कीजिये, मन में धरि अभिमान ।
कामदेव † मारे गये, छोड़ि शंभु पै बान ॥

* ध्रुवजी जब बालक थे । तब उनकी सोतेली माता ने कहा था कि तू बड़ा मन्दभागी है, यदि पुण्यात्मा होता तो मेरे जैसी भाग्यवती राणी के गर्भ में निवास करता । इस पर क्रुद्ध हो ध्रुवजी ने घर छोड़ वन में जाकर ऐसा कठिन तप किया कि जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें भरतखण्ड का आ- धिपत्य तो यहां और वहां भी सब से ऊंचा स्थान प्रदान कर कृतार्थ किया.

† तारकासुर को मारने के लिये जब देवसभा हुई, तब कामदेव ने महादेवजी का मन डिगाने को कठिन प्रण किया, जिसका फल यह निकला कि शंकर की क्रोधाग्नि में पतंग के समान पड़कर उसे जलना पड़ा.

कठिन काम वह करि सकै, जिसके मित्र अनेक ।
तासों उत्तम मित्र को, संग्रह कर धरि टेक ॥
कनक कामिनी से नहीं, जिसको चित्त लुभाय ।
उसको गिनिये देवसम, स्मृति अस भेद बताय ॥
कनगुरियातें रेख चलि, जाय तर्जनी पास ।
तो आयुष भोगै मनुज, राखिये दृढ़ विश्वास ॥
कन्या का मुख बाप के, मुख से मिलता होय ।
तो वह घर के दुःख को, निश्चय देवै खोय ॥
कन्या बारह वर्ष की, सोरह वर्ष कुमार ।
ब्याह योग हो जात हैं, स्मृति अस कहत पुकार ॥
कन्या सुन्दरवर चहै, माता धन, यश तात ।
चाहैं बन्धु कुलीनता, अरु मिष्टान्न बरात ॥
कपट छोड़ि विश्वास सें, जो रिपु भी घर आय ।
तो उसको नाहिं मारिये, इमि स्मृति भेद बताय ॥
कपट न कीजे सुजन तें, दुर्जन तें कर जाय ।
जैसे संग तैसे रहो, इमि नयशास्त्र बताय ॥
कमडलसम लेकरि बहुत, देवै तासूं थोर ।
ऐसे मंत्री को गिनो, सचिवन को सिरमौर ॥
कर ताड़न से गेंद जिमि, नीचे पड़ि उठि जात ।
तिमि अवनति सत्पुरुषकी, अधिक नहीं ठहरात ॥
करनो चहै बिगार शठ, तब झूठी स्तुति गाय ।
मृग मारन ही के लिये, व्याध सतार बजाय ॥

करिणी सँग क्रीड़ा करो, विचरो सरवर पाज ।
क्यों मृगपति तें युद्ध करि, मरण चहो गजराज ॥
करुणा और विभाग सम, ये गुण नृप में होय ।
तब ह्वाँ भोग सकै धरा, नातरु देवै खोय ॥
करूं करूं इस ध्यान में, मरण गयो तू भूल ।
निसदिन कालकुठार ले, काट रह्यो तव मूल ॥
कर्मबन्ध नहिं मिटत है, किये अनेक उपाय ।
देखो नन्दी शंभुपुर, बसि पुनि पात चबाय ॥
करे प्रीति जो शत्रु से, मित्र भरोसा खोय ।
अरु अनर्थ में चित धरे, वो नर पीछे रोय ॥
करै न आरँभ काज को, कायर तो भय खाय ।
पै उद्योगी छेड़ि पुनि, पूरण करि जस पाय ॥
कर पे कर धरि दीन को, पालन मोटी बात ।
नीचो कर करि पेट को, भरणों सब हिं सुहात ॥
करै प्रीति समकक्ष ते, तभी बनें सब काम ।
जीती लंका युक्ति तें, मिलि सुग्रीवरु राम ॥
करै भलाई मित्र की, महिमा यामें कौन ।
रिपु के भी कारज करें, वे मनुष्य गुणभौन ॥
कलस जेवड़ी तोड़ यदि, कूप बीच गिरजाय ।
तो करमें की जेवड़ी, क्यों दीजे छिटकाय ॥
कलह सदा जहँ अर्थ बिन, सुनै न गुरुजन बैन ।
ऐसे घर को जब तजै, तब नर पावै चैन ॥

कलह होत है झुँड में, दो में होवे वात ।
तासों योगी रहत है, एकाकी दिनरात ॥
करै सहाय कुबन्धु की, सज्जन तजि निज रोष ।
देखु सुयोधन * को छुड़ा, पाण्डव पायो तोष ॥ १०० ॥
कला सीखि पुनि जो चहैं, सुखद भोग अरु योग ।
तब तो पावै अमित सुख, नातरु लागै रोग ॥
कवि की कविता तो चले, सदा अर्थ के साथ ।
पै ऋषिजन के वचन को, अर्थ नवै नित माथ ॥
कविता के माधुर्य को, कवि ही जानै तात ।
बिन मधुकर मकरन्द को, कौन रसिक दिखलात ॥
कविवर तो कविता करै, गुण ग्राहक फैलाय ।
जिमि तरु तो देवै कुसुम, वायु सुगन्ध बढ़ाय ॥
कविता देवै चातुरी, कुशलपनों इतिहास ।
गणितशास्त्र गंभीर्य अरु, दर्शनशास्त्र प्रकास ॥

* एक समय राजा दुर्योधन वनवासी पाण्डवों की दुर्दशा देखने के लिये अपने इष्टमित्रों को साथ ले वनमें गया । वहां किसी सरोवर पर न्हाने धोने के विषय में दुर्योधन के सेवक गन्धर्वों से लड़ पड़े । जब यह वृत्त दुर्योधन को विदित हुआ, तो उसने तुरंत ही कर्णादि योद्धाओं को लेजाकर उन्हें दबा दिया । इधर वे लोग भी दौड़कर अपने स्वामी चित्ररथ के पास पहुंचे और उन्हें सब वृत्तान्त निवेदन किया, जिसको सुनते ही गन्धर्वराज चित्ररथ वहां आया और उन्हें पराजित कर मूर्छित दुर्योधन को बांध, उसे स्त्रियों सहित अपने साथ ले गया। राजा की यह दशा देख मंत्री लोगों ने विवश हो, निकटस्थ महाराज युधिष्ठिर के पास पहुंचकर उनसे सहायता मांगी । सुनते ही महाराज ने सब वैरभाव छोड़ राजा को छुड़ाने के लिये अपने भाइयों को भेजा । उन्होंने जाकर तुरन्त ही अपने प्रयत्नों से दुर्योधन को छुड़ाकर अपने महत्त्व का परिचय दिया.

कहुँ प्रसाद कहुँ ओज को, कविता में कवि लाय ।
क्षमा तेज तस दुउनको, धारे नृप सुख पाय ॥
काकपक्ष को कनकमय, बनादेय यदि कोय ।
तो भी उसका हंससम, आदर कबहुं न होय ॥
कान मूंदने पर नहीं, घोष सुनाई देय ।
वो थोड़े ही समय में, यमपुर को पथ लेय ॥
काम क्रोध ये ठग बड़े, लूटें नर अरु नारि ।
जो जागै सो ही बचै, ऋषि मुनि कहें पुकारि ॥
कामबाण तें लहत हैं, ज्ञानीजन भी हार ।
कण्ठ लगाई मेनका, कौशिक * ध्यान विसार ॥
काट छाँट अरु आँच दुख, गिनूं न मनके मांहि ।
पै गुंजासँग तोलनो, स्वर्ण कहै सहुँ नांहि ॥
काम, क्रोध, अरु लोभवश, करै जाति को भेद ।
वो पावै इस लोक में, अपकीरति तें खेद ॥
कायाचादर के लग्यो, राग द्वेष को मैल ।
लगै सतोगुण खार जब, तब वह होय सुचैल ॥
काया † के संग रोग है, सुख के सँग दुख तात ।

* स्वर्गसे उतरी हुई मेनका अप्सरा ने तप करते हुए विश्वामित्रजी को पुष्करारण्य में मोहित किया था, जिसकी सविस्तृत कथा पुराणों में लिखी है.

† हांसी में विवाद बसै, विद्या मांहि बाद बसै, भोग मांहि रोग, पुनि सेवा मांहि दीनता । आदर में मान बसै, शुचि में गिलान बसै, आसन में जान बसै, रूप मांहि हीनता ॥ योग में अभोग, औ सँयोग में वियोग बसै, पुण्य मांहि बन्धन, अरु लोभ में अधीनता । निपट नवीन, ये प्रवीन ने सुचीन लीन हरि-जूसों प्रीति अरु सब सों उदासीनता.

मिलिवे के संग विछुरिवो, दृढ़ समझो यह बात ॥
कारज अवसर पै बनै, विन अवसर मत जान ।
जिमि चाँवल पाकै शरद, तिमि ग्रीषम मत मान ॥
कारणवश जो द्वेष हो, सो कारज तें जाय ।
किन्तु वृथा विद्वेष को, कहु कस कौन मिटाय ॥
कालीमिरचें पीसकर, तुलसी के रस माँय ।
यदि पीवें तो विषम ज्वर, मिटिहै संशय नाँय ॥
किसी जीव की हानि कर, स्वार्थ साधनों धूर ।
अस विचार कारज करे, सो पंडित भरपूर ॥
किसी वृक्ष की जड़ विषें, दादुर वैठ्यो पाय ।
तो इक हाथ उतर दिशा, नो गज पै जल आय ॥
कीड़ी को कणमात्र अरु, हाथी को मण धान ।
दे करि सब को पालते, श्रीकेशव भगवान ॥
कीड़े तो जहँ बहुत से, पै बिल होवै नाहिं ।
तहां तीन गज पै सलिल, निकसै धरती माहिं ॥
कीर्त्ति कँवारी रह गई, इस जग के बिच आय ।
सज्जन उसको चाय नाहिं, अरु खल उसे न भाय ॥
कुकरम करि पछिताय तो, होय पाप कछु नास ।
भाषि धर्मसुत * झूठ को, पीछे भये उदास ॥

* सत्यवादी महाराज युधिष्ठिर ने देशकाल देखकर रण में कहा था कि "अश्वत्थामा हतः कुञ्जरो वा नरो वा" अर्थात् अश्वत्थामा मर गया न जाने वह हाथी था वा पुरुष ?, बस इतने वचन सुनते ही द्रोणाचार्य ने विश्वास में आकर तुरन्त शस्त्र गिरा दिये। जिससे पाण्डवों की बहुतसी सेना तो बच गई,

कुल, विद्या, वय, शील, वपु, अरु धन लखिके तात ।
वर को कन्या देय सो, अवशि पाय कुशलात ॥
कूप, भूप, दोऊ मुझे, दीखें एक समान ।
जो निर्गुण को देत नहिं, जल अरु धन को दान ॥
कृपणतुल्य दानी नहीं, यह सांची है बात ।
जो परहित सर्वस्व ही, अनछेड्यो तजि जात ॥
कृशतनु अरु असहाय हूं, वनविच परिजनहीन ।
ऐसी चिन्ता नहिं करै, मृगपति साहसपीन ॥
केवल ऊंची डार पै, बैठत खगसमुदाय ।
पै चाखै रस आम को, पिक जो पंचम गाय ॥
केशों का क्या दोष है, जिन्हें करो तुम दूर ।
काम, क्रोध त्यागे विना, केशविलुंचन धूर ॥
कैतो सुखिया पूर्ण बुध, अरु कै जो अज्ञान ।
अधविचला निसदिन दुखी, नीति करै इमि गान ॥
कैर वृक्ष से उतर को, मरु में हो वल्मीक ।
तो तरु तें दो गज दिखन, तिस गज पै जलठीक ॥
कोयल पंचम राग करि, अब तो गुण दिखलाय ।
नातरु कौवा जानि खल, देंगे तोहि उड़ाय ॥
कौन देश अरु काल है, कौन मित्र मैं कौन ।
क्या व्यय, औ क्या आय अस, सोचि करै बुध तौन ॥
कौवे काले रंग तें, कोयल जानी तोय ।

पर महाराज युधिष्ठिर ने जन्म भर में कभी झूठ नहीं बोला था, अतः उनको इस बात का बहुत पछतावा रहा, जिससे कुछ पाप हलका हुआ.

पै तेरे इस शब्द ने, भेद बतायो मोय ॥
कौवन में चिरकाल रहि, जिमि पिक दोष न लेय।
तिमि बुध खलजन सेय के, फिर भी रहत अजेय ॥
कौवा चाखै मधुरफल, पाँखों का बल पाय।
अरु बिन पाँख मृगेन्द्र भी, तरु तें क्या ले जाय ॥
क्रोध न कीजे सुजन पै, किये लगत है दोष।
दुर्वासा * भोगी विपति, करि हरिजन पै रोष ॥
क्रोध करै होकर अबल, मान चहै कछु मांग।
तो जानों इन दुउन ने, निश्चय पीली भांग ॥
कंटक अरु अहि देखते, रहूं न तेरे पास।
पै पुनि पुनि चित चोरती, केतकि तोर सुवास ॥
खारे जल को जलद जिमि, मीठो कर बरसाय।
तिमि खल के कटुवचन को, साधु सुधारि सुनाय ॥

---

* राजा अम्बरीष विष्णु का बड़ा भक्त था। एकबार उसने दुर्वासा ऋषि को नोता दिया। ऋषि तो नोता मान स्नान सन्ध्या करने को नदीतट पर चले गये और पीछे से क्षुधातुर राजा ने कुछ चरणोदक ले लिया। जब ऋषि आये और उनको यह वृत्त विदित हुआ तो वृथा ही क्रोध कर राजा को भय दिखाने के लिये एक माया की कृत्या भेजी। राजा उसे देखकर घबराया परन्तु ईश्वर की कृपा से वह कृत्या तो अलक्ष्य हो गई और चक्र ऋषि के पीछे पड़ गया। ऋषि ने बहुत उपाय किये पर चक्र से छुटकारा नहीं हुआ अंत में जब विष्णु के शरण में गये तो उन्होंने कहा कि हे ऋषे! राजा ही तुम को बचा सकता है। तब तो ऋषि हार थाक राजा के पास गये। राजा ने तुरंत अपराध क्षमाकर उनका कष्ट मिटाया और यथोचित सत्कार कर उनको प्रसन्नतापूर्वक विदा किया.

खैंचत नक्र गजेन्द्र को, अपनो थल जल पाय ।
अरु वह वाहर पांव की, आहटतें डर जाय ॥
खोदत खोदत कृषक जिमि, अवशि अमितजल पाय ।
तिमि गुरु सेवक शिष्य भी, अवशि गुणी बनि जाय ॥
गई बात के शोक को, तजे वही सुख पाय ।
देखो अर्जुन सुतमरण *, सुनि न गयो घवराय ॥
गजसम धावत चित्त को, विषय विपिन के मांहि ।
ज्ञानांकुश तें विज्ञजन, लावें निजपथ मांहि ॥
गर्भवास में दूध को, जिसने कियो प्रबन्ध ।
वह क्या दीनदयाल अब, तजि देगो निज सन्ध ॥
गर्भवती स्त्रीको पुरुष, जस उपदेश सुनाय ।
तस गुण आवें पुत्र में, स्मृति अस भेद बताय ॥
गुणअर्जन में कर जतन, क्या पखंड तें होय ।
हृष्ट पुष्ट विन दूध की, धेनु मोल लै कोय ॥
गुणग्राहक अरु धर्मरत, जिमि दुर्लभ है नाथ ।
तिमि ज्ञानी अरु उद्यमी, सेवक लगै न हाथ ॥
गुण तें जितनो मान है, तितनो कुल तें नांहिं ।
कृष्ण और वसुदेव की, स्थिति देखो जग मांहिं ॥

* वीर तथा सुशील पुत्र अभिमन्यु को जब कौरवों के सेनापतियों ने घेर कर मारडाला । तब अर्जुन उस पुत्रमरण के शोक से ऐसा दुखी हुआ कि पहिले तो सब सुध बुध भूलगया, पर जब चेत आया तो शोक को त्याग ऐसी शूरता दिखाई कि कौरवों के छक्के छुड़ा दिये.

गुणविहीन ही रखत हैं, अधिक अडम्बर ठाट ।
देख स्वर्ण बाजै नहीं, कांस्य करै झरणाट ॥
गुणविहीन वा वृद्ध को, कन्या देवै जौन ।
केवल धन के लोभ से, अधम पुरुष है तौन ॥
गुण सीखै पर पचतें, सो उद्यमी कहाय ।
कच * अरु शुक्राचार्य को, चरितभेद अस गाय ॥
गुण है तहां न अर्थ अरु, अर्थ जहां गुण नांहि ।
दोनों की एकत्र स्थिति, दुर्लभ जग के मांहि ॥
गुणीसाथ आदर लहै, निर्गुण यह सच बैन ।
जैसे काजर मन हरै, लगि तरुणी के नैन ॥
गुरुजन के कड़वे वचन, सहै वही सुख पाय ।
देखो हीरा साण दुख, सहि पुनि मुकुट दबाय ॥
गुरुजन जो संतोष तें, वस्तु तुम्हें कुछ देत ।
उसको लेओ प्रीति सों, जो तुम चाहो हेत ॥
गुरु अरु नृप के द्वार पै, भेटसहित जो जाय ।
वो भी उनसे दान अरु, मान पाय घर आय ॥
गुरुसेवा करते समय, तजि दीजे अभिमान ।
राम † और श्रीकृष्ण को, चरित देत यह ज्ञान ॥

---

* शुक्राचार्य तो दैत्यगुरु और बृहस्पति देवगुरु थे, अतः उनका आपस में पूर्ण वैमनस्य था. जब शुक्राचार्य से संजीविनी विद्या लेना बृहस्पति के पुत्र कच ने चाहा तो उसको बड़ा परिश्रम करना पड़ा। अन्त में उसने शुद्धभाव से शुक्राचार्य को गुरु बनाकर तन मन और धन से पूर्ण सेवा की, जिससे संतुष्ट होकर गुरु ने सब रहस्य अपने शिष्य को सांगोपांग बता दिया.

† श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि राजकुमार थे। तथापि अहंकार त्याग गुरु

गुरु को पूजें स्वार्थवश, धरि परमारथ मौन।
गैया राखें दूधहित, पूजन को कहु कौन॥
गुरुसेवक विद्या लहै, अथवा धन दातार।
विद्या तें विद्या मिलै, चौथो नहिं कोइ द्वार॥
गृही, आलसी, अरु यती, जो प्रपंचरत होय।
ये दोनों विपरीत चलि, सब सुख देवें खोय॥
गो पालै गोपाल नहिं, तिरशूली शिव नांहि।
चक्रपाणि पै विष्णु नहिं, बुध सोचो मनमाहिं॥ (सांड)
गौ, ब्राह्मण अरु ज्ञाति में, धरै शूरता जौन।
तरु तें पाके फल सरिस, गिरै राज्य तें तौन॥
गोसेवा में सर्वदा, देखि कृष्ण की प्रीति।
लक्ष्मी ने चांपे चरण, कहैं पुराण पुनीत॥
घर आये रिपु को सुजन, कारज देत बनाय।
जैसे बड़वा अगनि की, सागर प्यास बुझाय॥
घर में यदि चाहो कुशल, तो व्याहो इक नार।
दशरथ व्याह अनेक करि, कैसे सहे बिगार॥
घास खाय जल पान करि, सोवें जंगल बीच।
ऐसे भोले हरिण को, मारै व्याधा नीच॥

विश्वामित्र की सेवा में ऐसे दत्तचित्त रहते थे कि वे देवपूजा के लिये पुष्प तक भी उद्यान से स्वयं तोड़कर ला देते थे.

इसी प्रकार कृष्णचन्द्र भी जब सांदीपिनि ऋषि के पास विद्या पढ़ते थे तब वे भी एक बार गुरुपत्नी की आज्ञा से सुदामाजी को साथ ले जंगल में यज्ञकाष्ठ लेने के लिये बरसते मेह में गये थे.

घूमत शोभा चक्र की, घूमत साधु पुजाय ।
घूमत नृप पूजा लहै, स्त्री घूमति विनसाय ॥
चतुर नहीं करते कभी, बहुतन संग विवाह ।
अरु भावीवश होय तो, सब को करत निवाह ॥
चतुराई पिकने करी, वर्षाऋतु धरि मौन ।
मेंडकसे वक्ता जहां, बकै वृथा तहँ कौन ॥
चलत चलत चींटी चढ़ै, पर्वतहू के माथ ।
और गरुड़ भी बिन चले, पहुंच सकै नहिं हाथ ॥
चलै न्यायपथ पै सदा, उसे देत प्रभु राज ।
नातरु इस संसार के, कैसे सरिहैं काज ॥
चातकसम जग में नहीं, मानी कोइ दिखात ।
जब मांगे तब इन्द्र पै, नाहिं प्यासो मर जात ॥
चार वेद षट्शास्त्र के, ज्ञाता सभ्य सुजान ।
राजसभा में होय जहँ, तहँ सुखशान्ति निधान ॥
चाराने भर नोन में, फिटकरि द्विगुण मिलाय ।
प्रतिदिन दांतण के किये, दंत बज्र बनिजाय ॥
चारों वेदों की करै, पारायण नर जौन ।
सब तीर्थों का स्नानफल, पाय सहज में तौन ॥
चालि सकै असि धार पै, सकैं सिंह सँग खेल ।
पै दुर्जन अध्यक्ष की, सकैं न सेवा झेल ॥
चिड़ी कमेड़ी के लिये, यथाशक्ति कछु धान ।
तजें खेत में वे कृषक, पावें पुण्य महान ॥

चोरी, जारी, कटुवचन, लोभ, ईर्षा, मान ।
इतने अवगुण जो तजै, मिलै ताहि भगवान ॥
चंचलता जिह्वा करै, अंड बंड करि बात ।
पै निर्दोषी दाँत ये, क्योंकरि पाड़े जात ॥
चंदन तोर सुगंध गुण, मोय बुलावै पास ।
पै निःश्वास भुजंग के, करते निपट निरास ॥
चंचल का चंचलपना, अरु जड़ की जड़ताइ ।
पंडित के उपदेश तें, तुरत मिटत है भाइ ॥
चंद, सूर, तारा, अगनि, यद्यपि करें प्रकास ।
तदपि गेह में नारिबिन, होवै नाहिँ उजास ॥
चन्द्र, सूर्य, पावक, अनल, गगन, भूमि, जल, काल ।
रात, दिवस अरु मन, इते जानें सबके ख्याल ॥
चंद्र, सूर्य, पावक, सलिल, वेद, विप्र, सुर, गाय ।
इनको जो आदर करै, सो अवश्य सुख पाय ॥
छठो, बीसवों, तीसवों, देकरि अंस किसान ।
नृप, ब्राह्मण अरु देव को, पावें पुण्य महान ॥
छत्र, चँवर, रथ, बाजि, गज, और राज के साज ।
सपने के सब खेल हैं, समझलेउ महराज ॥
छल तें विद्या सीख मत, सीखे होवै हान ।
वृथा गयो श्रम कर्ण * को, कहै पुकारि पुरान ॥

* क्षत्रियों से असंतुष्ट होकर परशुरामजी ने उनको धनुर्वेद सिखाना छोड़ दिया था । पर अर्जुन को जीतने की इच्छा से कर्ण ने ब्राह्मणवेश में

छाती सज्जन पुरुष की, मुझ को कठिन लखाय ।
जिसको खलके वाक्यशर, बेधि प्रवेश न पाय ॥
छोटे ही को कष्ट दे, बड़ो बनावत काज ।
जैसे अहिशावकनि भखि, वनि बैठे अहिराज ॥
जदपि शास्त्र कह जीव की, हिंसा करणी खोट ।
तदपि मारि पापी अधिक, बांध धर्म की पोट ॥
जन्मदास, रोगी, अधन, बँधुवा अरु अज्ञान ।
व्यासवचन तें पाँच ये, जीवत मृतक समान ॥
जन्मभूमि त्यागे विना, जिसे अन्न मिलजाय ।
अरु कौड़ी ऋण होय नहिं, तो वह सुखी कहाय ॥
जन्म मरण के कष्टतें, जो तू बचनों चाय ।
तो ज्ञानाऽनल में हवन, करदे अघसमुदाय ॥
जब जब मेरो जन्म हो, तब तब कृपानिधान ।
भक्ति होय तव चरण में, यह माँगूं वरदान ॥
जबतक देह अरोग अरु, मृत्युसमय है दूर ।
तबतक करिले हरिभजन, पुनि क्या करि है कूर ॥

जाकर उनसे विद्या सीख ली । फिर थोड़े समय के अनन्तर जब उसका साहस देखा तो उन्होंने जान लिया कि यह कोई क्षत्रिय का पुत्र है और मुझ को ठगकर इसने अपना अर्थ बनाया है तब क्रुद्ध हो इसे शाप दिया कि अरे छली ! तूने कपट करके जो मुझ से विद्या सीखी है इसका यह फल होगा कि तेरी विद्या निष्फल हो जायगी । सो ऐसा ही हुआ कि जब अर्जुन और कर्ण का घोरसंग्राम हुआ तब कर्ण के रथ के पैहे धरती में गड़ गये, जिससे वह तो विवश होगया और अर्जुन ने उसे मारकर अपना अर्थ सिद्ध किया.

जब दो आपसमें लड़ैं, तब धन तीजो खाय।
तासों सोच विचारकर, घर में समुझिय भाय ॥
जब विद्या अरु बुद्धि को, मेल यथारथ होय।
तब नर आधि व्याधि को, देत सहज में खोय ॥
जब राजा नहिं लखिसकै, न्याय और अन्याय।
तब श्रुतिपारग विप्र की, सम्मति लेवै जाय ॥
जबलों मृगपति नींद में, तबलों भोंकत स्यार।
जागे गजपतिहू भजे, तजि के निज परिवार ॥ २०० ॥
जब सुरतरु भी समय पै, फल देने लगजाय।
तब वह दूजे वृक्ष से, क्योंकर बड़ो कहाय ॥
जब पावै नहिं पातकी, अस शिक्षा मत भूल।
शुक्र * पुरोहित थे तऊ, दैत्य भये निर्मूल ॥
जल को स्वाद विभिन्न अरु, लवण छिपाछिप्यो होय।
तो वर्षा आवै अवशि, इमि भाषत सब कोय ॥
जलनिधि तोरे रत्न को, नमस्कार है मोर।
भले बचे जो नक्र ने, मांस लियो नहिं तोर ॥
जल में मुख को देख मत, चढ़ मत टूटी नाव।
सरिता को मत तर तथा, विकट ठौर मत जाव ॥
जहँ नारी आदर लहैं, तहँ देवन को वास।
अरु जहँ ये दुःखित रहैं, वह घर पावै नास ॥

* शुक्राचार्य अपने यजमान दैत्यों को धर्म का उपदेश देते थे, पर वे उसको नहीं मानते थे। केवल अपने पुरुषार्थ से अनर्थ करके राज्य पा लेते थे जो थोड़े से समयतक ही स्थिर रहता था फिर वैसे के वैसे ही होजाते थे.

जहां बहुत मुखिया रहैं, अरु सब चाहैं मान ।
एकगिने नहिं एक को, तो सब गिरैं निदान ॥
जहां सत्य * तहँ धर्म अरु, जहां धर्म तहँ जीत ।
तासों मन, वच, कर्म तें, सत पै चलिये मीत ॥
जाको जैसो भाव है, बालँग वैसो होय ।
स्वामी को निजवश करै, चतुर भृत्य है सोय ॥
जात्रा में जाते समय, सिद्ध करो कह कोइ ।
अरु आगे आओ कहै, सुफल मनोरथ होइ ॥
जिमि जल आव निकास विन, फोड़देत है ताल ।
तिमि धनआगम दान विन, ठहरै नाहिं सबकाल ॥
जिमि ताते जल तें नहीं, सींचिय कोमल बेल ।
तिमि प्रिय को कटुवचन कहि, कबहुँ न करिय अमेल ॥
जिमि तृणपुंजहि अग्निकण, पल में देत जलाय ।
तिमि मिथ्याभाषण भसम, करत पुण्यसमुदाय ॥
जिमि दिनकरके उदय तें, नष्ट होत है रात ।
तिमि विवेक आगमन तें, मिटै अविद्या तात ॥
जिमि पारद नाहिं थिर रहै, एक ठौर चिरकाल ।
तिमि सज्जन के चित्तमें, क्रोध न रहै भुआल ॥

* कीरति को मूल एक रैनदिन दान देवो, धर्मको मूल एक सांच पहचानवो । बढ़वे को मूल एक ऊंचो मन राखिवो है, जानवे को मूल एक भली बात मानवो ॥ व्याधिमूल अतिभोजन, उपाधिमूल हँसीठट्ठा, दारिद को मूल एक आलस बखानिवो । हारिवे को मूल एक आतुरी है समरमांहिं, चातुरी को मूल एक बात कहि जानवो.

जिमि मर्कट इक डारतें, इत उत उछलत जात ।
तिमि यह मन भटकत फिरै, विषयन में दिनरात ॥
जिमि वर्षाजल सरितसँग, मिलै सिन्धु में आन ।
तिमि सब देव प्रणाम को, केशव लेवे मान ॥
जिमि सागर में नक्र अरु, नृप में खल विश्वास ।
तिमि आछे के संग में, खोटे करैं निवास ॥
जिमि अँधेर को दूर करि, सूर्य * सबहिं सुख देत ।
तिमि उनपे छाया पड़े, प्रजा दिखावें हेत ॥
जिस नरपति का सुकवि यश, ग्रन्थों में लिख जाँय ।
उसका नाम विरंचि भी, मेटनकत है नाँय ॥
जिसके कारण अयश अरु, अपगति होवै भाय ।
ऐसे कुकरम छांड दो, तब सुख की है आय ॥
जिस कुल में जनमे नहीं, भक्त तथा गुणवान ।
तो उस कुल को दूसरो, पशुकुल लीजे मान ॥
जिस दिन उगते सूर्य्य को, देखत नयन मिचाय ।
उसदिन बरसै अवशि घन, इमि वराह बतलाय ॥
जिसके घट में बसत हरि, सकल सुमंगलखान ।
उसको जयलक्ष्मी सदा, करत रहै कल्यान ॥

* शास्त्रों में सूर्य तथा चन्द्रमा को तो प्रधान देवता और अमावस्या तथा पूर्णिमा को प्रधान तिथियां मानी हैं। यथाः—"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" अर्थात् चराचर जगत् की आत्मा (आधार) सूर्य्य है. जब सूर्य किंवा चन्द्रमा का ग्रहण होता है तब भूकम्पादिक उत्पात कहीं न कहीं अवश्यमेव होते रहते हैं। उन अनर्थों से बचने के लिये पुराणे लोगों ने यह प्रथा प्रचलित की कि यदि तुम ऐसे २ अवसरों पर सब मिलकर भजन, स्मरण, दान, धर्म करोगे तो परमेश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा और देशकाल देखकर किया हुआ कर्म भी तुम को अनन्त फल देवेगा.

जिस नर के हिरदै बसै, निसदिन स्त्री को संग ।
उसके धन अरु धर्म को, निश्चय जानो भंग ॥
जिस बालक का मुखकमल, माता से मिलजाय ।
तो वह निश्चय वंश का, गौरव बहुत बढ़ाय ॥
जीकर तो पालन करै, मरकर सेवै पाँव ।
अब कहु कैसे भूलिहैं, गैया तेरो नाँव ॥
जीर्ण तिहारो पींजरो, पास फिरै मंजार ।
शुक ! यदि बचनो चाय तो, अवशि मौन लै धार ॥
जीवहीन जब दुन्दभी, धन धन तोड़ै तान ।
तब चेतन नरनारि क्यों, बिनधन रहैं सुजान ॥
जूने सब गुणहीन नहिं, नये न सब गुणवन्त ।
ऐसे सोच विचारि पुनि, अर्थ साधते सन्त ॥
जैसे अपने प्राण प्रिय, तैसे सबके जान ।
मन, वच काया तें तजैं, हिंसा को गुणवान ॥
जैसे अलि परमल गहैं, कुसुमावलिहिं विसार ।
तैसे पंडित शास्त्र को, सारलेत नहिं भार ॥
जैसे राख्यो जुगति सों, बीज बनावै काम ।
तैसे रक्षित अबल जन, नृपहिँ देत धन धाम ॥
जैसो स्थान प्रधान है, तैसो बल मत जाण ।
शंकर उर लपट्यो * भुजँग, तजै गरुड़ की आण ॥

* एक समय विष्णु भगवान् गरुड़ पर चढ़ कैलाश में श्रीमहादेवजी से मिलने गये । वहां महादेवजी के गले में जो सर्प था, वह निःशंक हो गरुड़ के सामने अपनी अकड़ करने लगा, तब गरुड़ ने कहा कि भाई ! अभी तो मैं

जैसे दीपक खाय तम, उगलै काजर काल ।
तैसे जैसो खाय अन *, वैसे खेलै ख्याल ॥
जैसे दिन अरु रात का, चक्र घूमता जाय ।
तैसे ही सुख दुःख का, चक्कर समझो भाय ॥
जैसे औषधि देह का, तुरन मिटावै ताप ।
वैसे वैदिकज्ञान भी, मन का धोवै पाप ॥
जैसे औषधि रोग को, तनतें देत भगाय ।
तैसे धर्म अधर्म को, मनतें देत हटाय ॥
जो कोई उपकार करि, अपनो गुण वतलाय ।
सो मानो इक वैर को, वृक्ष नवीन लगाय ॥
जो जैसो कारज करै, वो वैसो फल पात ।
कंस भानजो मारिके, मरयो भानजे हात ॥
जो तुझको मन्तव्य नहिं, तुरत रोक दे ताइ ।
समय चूकि पुनि वोलनो, दुर्लभ है फलदाइ ॥
जो तूं चाहै कीर्ति को, तो तूं साहस धार ।
देख जलधि तरके भये, पूजित पवनकुमार ॥

तेरा कुछ नहीं कर सकता पर जो तू कहीं बाहर मिलजाय तो देखूं कि तुझ में क्या सामर्थ्य है। सो सच हैं कि अपने स्थान पर तो निर्बल भी सबल होजाता है.

* एक समय श्रीरामचन्द्रजी ने गर्भवती महाराणी जानकीजी से पूछा कि आपकी किस वस्तु पर रुचि है, इस पर उनने वन में रहने की इच्छा प्रकट की, सुनते ही महाराज यद्यपि बड़े ही उदास हुए, पर उनकी रुचि रखने को लक्ष्मणजी के साथ उन्हें महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पर निवास करने को पहुंचा दिए.

जो तूं फल रक्षा चहै, तो रख झाड़ी बाड़ ।
चोरों का क्या दोष है, राखे खुले किंवाड़ ॥
जो तूं काव्य सुवर्ण की, शुद्धि यथारथ चाय ।
तो खलाग्नि की ज्वाल में, पहले लेउ तपाय ॥
जो तेरे है हाथ में, उसको अपनी मान ।
आवन वारी वस्तु को, अपनी गिनै अयान ॥
जो नर उद्यम छांड़िके, रहै भाग्य आधीन ।
वो अवश्य दुख पात है, यामें मेष न मीन ॥
जो नर थोरी संपदा, पाय गहै सन्तोष ।
उसको लक्ष्मी तजत है, करके मन में रोष ॥
जो नर चिर जीवन चहै, सो पर नारि लिलार ।
तजै चौथ के चाँद सम, मन में करि निर्धार ॥
जो नर पथ्याशी रहै, ताहि न लागै रोग ।
विना रोग को देह यह, भोग सकै बहु भोग ॥
जो कोइ अपने वित्त तें, करै प्रजा को त्राण ।
उस पर न्यौछावर करै, प्रजा वित्त अरु प्राण ॥
जो भिक्षुक तुझको मिलै, उसको दे तूं चून ।
केवल कड़वा बचन तौ, दाझे ऊपर लून ॥
जो दूजे की हानि कर, अपनो अर्थ बनाय ।
वो तुरन्त ही जोंक सम, दुख पावत है भाय ॥
जो प्रति दिन करतो रहै, बैठि इकन्त विचार ।
उसके बल बुधि तेज को, निश्चय होत सुधार ॥

झूठ, कपट, अपवित्रता, निर्दयता, अज्ञान ।
साहस अरु अति लोभ ये, स्त्री के दोष पिछान ॥
झूठ, ठगाई, क्रूरता, निन्दा अरु अभिमान ।
तज देवै उस पुरुष का, होय तुरत कल्यान ॥
टूटै नहिं अरु नीर में, डाले तें तिरजाय ।
अस हीरा अनमोल है, इमि वराह बतलाय ॥
ठोकर खा शिरपर चढ़े, धूलि रोष में आय ।
जो धूलिहु तें नीच है, क्यों वह मनुज कहाय ॥
तजदे दुर्जनसंग को, भजले साधुसमाज ।
रटले नाम महेश को, यदि तू चाहै राज ॥
तट पर नौका आ लगी, तोभी कारज आध ।
को जानै विपदा अवहुँ, आकरि करै उपाध ॥
तप अरु विद्या से पुरुष, जग में पात्र कहाय ।
सदाचार तीजो मिलै, तव सुपात्र बनिजाय ॥
तपोवृद्धि अपमान तें, आदर तें तप-ह्रास ।
विचरें निर्भय साधुजन, हिय अस राखि प्रकास ॥
तात-सिन्धु लक्ष्मी-बहिन, भगिनीपति-भगवान ।
तो भी शंख न रतलम, निश्चय कर्म प्रधान ॥
तापस को सत्कार तजि, करै तासु अपमान ।
सगरपुत्र * समगति लहैं, कहैं पुकारि पुरान ॥

* एक बार इन्द्र ने राजा सगर के यज्ञ में से घोड़ा उचका कर महर्षि कपिलदेवजी के आश्रम में बांध दिया था। जब राजा ने घोड़ा नहीं पाया तो उसे खोजने को अपने सब पुत्रों को भेजे । वे खोजते २ संयोगवश कपिलदेव

त्रिगुण जेवड़ी तें गुथ्यो, यह संसारी जाल ।
भक्ति कतरणी होय तब, फन्द कटै तत्काल ॥

तुच्छ वस्तु को मेल ही, वड़ो वनावै काज ।
जैसे तृण को जेवड़ो, बाँधि सकै गजराज ॥

तृणसम परउपकार को, गिरिसम लेवें मान ।
ऐसे इस संसार में, विरले सन्त सुजान ॥

तृष्णा-कुलटा पुरुष को, अधरम में ले जाय ।
पै लज्जा माता उसे, पीछो खैंचि बचाय ॥

तेजस्वी के काम में, नियम आयु को नाँय ।
देख बालरवि के किरण, गिरत शिखर पै जाँय ॥

तैल, लवण, घृत आदि की, चिन्ता तें दिन रात ।
पंडितहू की मति घटै, मूरख की क्या बात ॥

थाकि, थाकि करतो रहै, जो नर उत्तम काम ।
वाकी नैया अन्त में, पार करै श्रीराम ॥

थोरे तें फल अधिक हो, ऐसे कर नर काज ।
फल थोरो अरु श्रम अधिक, तासों दूरो भाज ॥

दया-लेश जिसके नहीं, करै वृथा ही रार ।
अरु परधन दारा तकै, सो डूबै मझधार ॥

के आश्रम में जा पहुचे । वहां घोड़े को देख, प्रथम तो मोहवश ऋषि को ही चोर जान बहुत कुछ खोटा खरा कहने लगे, परन्तु जब वे न बोले तो सबने मिल कर ऐसा उपद्रव मचाया कि जिससे महर्षि की समाधि खुल गई । फिर ऋषि ने जब उन उपद्रवियों की ओर क्रोध से देखा तब वे सबके सब (अग्नि में पतङ्ग के समान) उनकी क्रोधाग्नि में गिर कर यमलोक को पहुँचे ॥

दाता याचक दुउन के, सब विधि हाथ समान ।
देकरि पायो उच्च पद, लेकरि नीचो थान ॥
दान वृथा श्रद्धा विना, वृथा ध्रुवक विन गीत ।
वृथा ध्यान है प्रेम विन, सत्य समझ ले मीत ॥
दिन को सोवो ग्रीष्म में, पथ्य मानिये तात ।
और शेष ऋतु में शयन, करै विविध उत्पात ॥
द्विशिग होय खजूर जहँ, तहँ पश्चिम की ओर ।
दोय हाथ पै सातगज, नीचे जल की ठौर ॥
दिन भर के कर्त्तव्य को, बाँटि करै जो काम ।
वो नर इस संसार में, पावै मोटो नाम ॥
द्विज-घाती पूजा लहै, यदि वह हो धनवान ।
पै शशिवंशज भी गुणी, विन धन लहै न मान ॥
दीप बुझे क्या तेललै, चौर भजे क्या चेत ।
वय-बीते क्या कामिनी, बहे नीर क्या सेत ॥
दुर्लभ वस्तु न चाय अरु, गतको करै न शोक ।
ऐसे पुरुषों के लिये सुखमय सारो लोक ॥
दुख पाकर भी जानकी *, फिर माँग्यो वनवास ।
इससे भावी प्रबल है, दृढ़ रख अस विश्वास ॥
दुख में क्यों चिंता करै, सुखमें क्यों गर्वाय ।
प्रभुने तो जस कर्म फल, तस ताहि दियो भुगाय ॥
दुर्जन खोजै दोष को, गुणगण को बिसराय ।
जैसे माखी रूप तजि, तुरत घाव पै जाय ॥

* पृष्ट २१ में इसकी कथा छप गई है वहां देखें ॥

दुर्जन अपने वंश का, पहिले करत बिगार ।
जैसे घुण निजवृक्ष को, काटि करै निस्सार ॥
दुग्ध पीय यदि स्वप्न में, चढ़ के ऊंचे थान ।
तो वह दिन दस बीत ते, पाय नृपति तें मान ॥
दुःशासन अरु ग्राह तें, कृष्णा * अरु गजराज † ।
कष्ट पाय प्रभु शरण ली, तो बनिगे सब काज ॥
दुष्ट संग ते सुजन भी, पद पद पावै हार ।
जैसे पावक लोह सँग, सहै हथोड़न मार ॥
दुष्ट नृपति के राज में, रहै वही दुख पाय ।
रामायण में लंक की, दीन्हीं गति बतलाय ॥
दूजे तें निज अर्थ की, सिद्धि यथारथ चाय ।
तो तूभी उपकार कर, यह इक सरल उपाय ॥
दूर रहूं का करि सकै, वह पण्डित रिपु मोर ।
ऐसे मत सोचो कभी, वाकी गति सब ठौर ॥

---

* सभाके बीच जब दुःशासन द्रौपदी का चीर उतारकर उसकी लाज खोने लगा, तब उसने सचे मन से श्रीकृष्ण का स्मरण किया, तो उन्होंने ऐसा चमत्कार दिखाया कि वह चीर इतना बढ़ा कि वह दुष्ट उतारता २ थक गया, पर चीरों का अंत न आया, अंत में आपही घबराकर नीचा शिरकर बैठरहा.

† एक भक्त ने अपने पूर्वकर्मों के प्रभाव से हाथी की योनि पाई थी वह एकदिन त्रिकूट पर्वत के पास किसी जलाशय में क्रीड़ा करने गया, तो तुरंत किसी ग्राह ने उसे पकड़ लिया। उस हाथी को पूर्वजन्म का ज्ञान था। अतः उसने ईश्वर का स्मरण किया तो परमेश्वर ने झट उसका कष्ट मिटाकर स्वर्गलोक को पहुंचा दिया.

देकरि वाही वस्तुको, पुनि दूजे को देत ।
वो नृग * सम गिरगट बनै, करै पुराण सचेत ॥
देखत ही चित को हरै, परसत धन को खाय ।
अरु भोगत बलक्षय करै, गणिका ठंडी लाय ॥
देकर तथा दिलाय कर, रखै अतिथि को मान ।
ऐसे सज्जन को सदा, ईश करै कल्यान ॥
देव, द्विज, पावक, नदी, कामधेनु वरनारि ।
अरु धर्मी, इतनेन को, प्रात दरस सुख कारि ॥
देव, पितर, अरु अतिथि को, विना किये सत्कार ।
भोजन कबहुँ न कीजिये, कहते शास्त्र पुकार ॥
देव, द्विज, गुरु, वृद्ध को, करै प्रणति नर जौन ।
कीर्त्ति, आयु, यश और बल, पावत है नर तौन ॥
देव, द्विज, गुरु, वेद की, निन्दा को करि त्याग ।
धर्म करै उस पुरुष के, खुलैं अवशि ही भाग ॥
देव, पितर, राजा, सुरभि, देखै सपने माँहिं ।
वो शुभफल पावै अवशि, इसमें संशय नाँहिं ॥
देव, पितर, अरु अतिथि को, विधि तें करि सत्कार ।
पीछे भोजन जो करै, वह गृहस्थ सविचार ॥

* राजा नृग परम गोभक्त था । वह बड़े २ ऋषियों के द्वारा यज्ञादिक कर्मों की समाप्ति के लिये समस्त भारत में ब्राह्मणों के पास गायें पहुँचाया करता था । एक बार दी हुई गाय को फिरसे देनेके कारण ब्राह्मणों में कलह होगया, जिस का पाप भोगने को थोड़े से समय के लिये राजाको गिरगट बनना पड़ा था.

देवै सो महिमा लहै, लेवै सो लघुताइ ।
देखो ऊपर मेघ अरु, नीचे ताल तलाइ ॥ ३०० ॥

देश, काल, अरु पात्र को, देखि देय जो दान ।
वह नर अक्षय पाय फल, कहत पुकारि पुरान ॥

देहमांस शिबि ने दियो, त्वचा कर्ण महराज ।
दीन्हें हाड़ दधीचि * ने, परमारथ के काज ॥

देह नहीं जिस काम के, उससे जाओ हार ।
तो उनको किमि जीति हो, जिन के सैन्य अपार ॥

दो पाँखों से विहग जिमि, गगन बीच उड़ि जाय ।
तिमि मोक्षार्थी ज्ञान अरु, कर्म साधि सुख पाय ॥

द्रोह और छल छांडि के, करै मित्र को काम ।
ऐसा नर संसार में, पावै मोटो नाम ॥

दण्डनीय को छोड़कर, पकड़े छोड़नजोग ॥
अस अनीतिरत नृप अवशि, भोगै बीसों रोग ॥

धन अरु विद्यार्जन समय, अमर आप को जान ।
और सिरातें काल है, यों विचारि दे दान ॥

धन अरु यौवन पायके, जिसने मद अरु काम ।
जीते उस नर बीर को, मिलि है मोटो धाम ॥

---

* महर्षि दधीचि जब नैमिषारण्य में तप कर रहे थे तब देवताओं ने जाकर प्रार्थना की कि महाराज! तत्कालमृत एक योगिराज की हड्डियों की बड़ी आवश्यकता है सो आप कृपाकर दीजिये । इतना बचन सुनते ही ऋषि बोले "धन्य मेरे भाग्य जो यह शरीर आप जैसों के काम आवे," ऐसे कह तुरन्त योग की रीति से कलेवर त्याग कर देवताओं का अर्थ सिद्ध किया।

धन अर्जन में दुख जितो, वाही तें यदि आध ।
धर्म हेत सह लेय तो, निश्चय मिटै उपाध ॥
धन, धरनी, अरु कामिनी, इनमें तें इक आय ।
तव तो लड़नों उचित है, नहिं तो चुप रह भाय ॥
धन, विद्या, अरु सुमति को, बड़भागी नर पाय ।
मंदभाग्य तो जन्मभर, तरस तरस मरजाय ॥
धन, विद्या, अरु धर्म को, संचय करले जाय ।
जिससे तुझ को लोक में, कोइ न सकै सताय ॥
धर्मकल्पतरु का समझ, अर्थ मनोहर पान ।
काम सुगंधित फूल अरु, मोक्ष मिष्ट फल जान ॥
धर्म्म तजै नहिं विपति में, वही वीर कहलाय ।
हरिश्चन्द्र * नृपको चरित, सवहिं भेद वतलाय ॥
धरो पांव थल देखिके, जलको पीवो छान ।
वाणी वोलो सत्य अरु, काम करो फल जान ॥

* एक समय वशिष्ठ मुनिने विश्वामित्रजी से कहा कि आजकल संसार में राजा हरिश्चन्द्र के समान कोई सत्यव्रत नहीं है। इस पर ऋषि उसकी परीक्षा करने के लिये जाकर उसका राज माँगा तो सबका सब राज देदिया। फिर जब दक्षिणा माँगी तो राज छोड़, स्त्री पुत्र को वेच, आप डूमके घर नौकर रह, अनेक कष्ट पाय उनका ऋण चुकाया। ऐसी विपत्ति में भी फिर देखिये कि स्वामी के कार्यका इतना विचार रक्खा कि विना कर लिये अपने पुत्रको भी जलाने नहीं दिया। जिससे रांणी अतिखिन्न हो जब अपना आधा वस्त्र फाड़कर कर चुकाने लगी तो भी वह नहीं डिगा। इसपर भगवान् ने प्रसन्न होकर तुरन्त दर्शन दे राजा को पुनः साम्राज्य प्रदान किया। और जब प्राणांत का समय आया तब वैकुण्ठ धाम देकर वारंवार जन्म मरणके कष्ट से छुड़ा दिया ॥

धरै न उद्धतवेश कछु, कड़वी कहै न बात ।
और साधुसेवी रहै, वो नर नम्र कहात ॥
धीर पुरुष जो पाय पद, करके बहुत प्रयास ।
वो पद पावै साहसी, क्षण में करि रिपुनास ॥
धुआँ नीकसै आपही, ऐसी धरती माँहि ।
दोय पुरुष पै जल मिलै, संशय इसमें नाँहि ॥
धूर्त पुरुष को दीजिये, वाणी सोच विचार ।
देखो वृक * ने पार्वती, चाही शिव को मार ॥
ध्वजा पर्ण अरु कमठ को, अवयव स्थिर होजाँय ।
पै यह चंचल चित्त नहिं, ठहरै प्रभु पदमाँय ॥
नग्न नारि देखै नहीं, वीर दृढ़व्रत पालि ।
देखि कोटरा † को नगन, शस्त्र तजे वनमालि ॥
नदी बढ़ै पादप फलै, अरु शशि होवै पूर्ण ।
पै गत यौवन आय नहिं, लिये अनेकन चूर्ण ॥

---

* एक समय वृकासुर ने घोर तप कर महादेव से ऐसा भयंकर वर मांगा कि मैं जिसके सिरपर हाथ रक्खूं वो ही भस्म होजावे । शंकरने कहा कि तथास्तु । कुछ दिन पीछे उसने पार्वतीजी को लेनेकी इच्छा से महादेवजी के ऊपर ही हाथ रखना विचारा कि इतने में विष्णु भगवान् वहां आपहुँचे और उसे बहका कर उसका हाथ उसी के ऊपर धरा दिया जिस से वह असुर आपही मरगया सच है । जो गुरु जनों पर घाट घोलता है उसकी यही दशा होती है ॥

† एक समय बाणासुर और श्रीकृष्ण का युद्ध हुआ जिसमें बाणासुर को हारते देख उसकी माता कोटरा रणक्षेत्र में वस्त्र त्यागकर श्रीकृष्ण के सामने आखड़ी हुई तो भगवान् ने नग्न स्त्री का दर्शन करना शास्त्र के विरुद्ध समझ नयन मूँद लिये और लड़ाई बन्द होगई ॥

धन दारादिक से पुरुष, जितनो प्रेम बढ़ाय ।
उतनो मानों शोक को, वृक्ष सींचतो जाय ॥
धन विद्या अरु सैन्य ये, तीनों चहिये पास ।
दूर होय तो समय पै, पूर्ण करें नहिं आस ॥
धनिक न होय रसायनी, कौलिक मुक्ति न पाय ।
जामाता सुत होय नहिं, नीतिशास्त्र इमि गाय ॥
धनिक इष्ट अरु पूर्त से, जितना सत्फल पाय ।
उतना फल धनहीन को, केवल भक्ति दिलाय ॥
धर्म, अर्थ, यश, काम अरु, आयुस को सुख पाय ।
तृप्त हुयो नहिं आज लौं, अरु होगो कोइ नांय ॥
धर्म अर्थ अरु काम को, समसेवन हित जान ।
अरु जो सेवै एक को, उसको पतन निदान ॥
धर्म उपार्जन बिन किये, श्वेत भये यदि बाल ।
तो समझो विधि क्रुद्ध हो, भस्मी दीन्हीं डाल ॥
धर्म कर्म के साथ जहं, स्त्रीपुरुषन में नेह ।
बन्यौं रहै तो जानिये, स्वर्ग तुल्य वह गेह ॥
धर्म कहौं संक्षेप तें, सब शास्त्रों का सार ।
महापाप अपकार अरु, महापुण्य उपकार ॥
धर्मनिष्ठ गुरु और नृपसेवा में तजि प्राण ।
शिष्य और सेवक लहैं, योगी सम निर्वाण ॥
धर्म रहै नहिं चोर में, क्षमा न दुर्जन माँहिं ।
प्रीति न वेश्या में रहै, सांच कामि में नाँहिं ॥
धर्म बिना जिस पुरुष के, बीतें दिन अरु रात ।
तो उसके भी देह को, भस्त्रा समझो तात ॥
धर्मी नृप के राज्य में, धर्म तजै नहिं कोय ।
अरु अधर्मि के राज्य में, सभी अधर्मी होंय ॥

नयन कर्ण अरु शीस के, श्वेत भये सब बाल ।
तोभी तृष्णा वृद्ध को, भरमावे सब काल ॥
नरकी देवै साख नर, अरु नारी की नारि ।
तब निर्णय होवै खरो, स्मृति अस कहति पुकारि ॥
नरको नर नहिं दास है, दास वित्त को मान ।
हाथ पांव तो स्वामि अरु, सेवक के सम जान ॥
नव वय में जो शांत है, वही शांत कहलाय ।
पै जब बल घटजाय तब, शांत सभी बनि जाय ॥
नर तें नारी में अधिक, ज्ञान यही सच बात ।
वह तो पढ़ि पंडित बने, यह अपठित निष्णात ॥
नर अरु नारी में रहै, जहां परस्पर नेह ।
वहां ईश बरसात है, सुख को प्रतिदिन मेह ॥
नारद ! तजि वैकुंठ अरु, योगि हृदय सो थान ।
भक्तों के घर में रहूं, जहँ मेरो गुणगान ॥
नारी के भौं चाप अरु, तिलक तीक्ष्ण है तीर ।
जिनने बेधे बहुतसे, जग के वीरशरीर ॥
नारी को अंगुलि दिये, पकड़त है वह हाथ ।
जैसे राधा ने कह्यो, कृष्ण ! चढ़ा मोइ साथ ॥
नारी को मत छोड़ नर !, पर तें लेउ छुड़ाय ।
बालि और सुग्रीव * को, चरित भेद बतलाय ॥

---

* किष्किन्धापुरी के राजा दो भाई थे । एक बाली और दूसरा सुग्रीव । बड़े भाई ने अन्याय से छोटे भाई की स्त्री को जब छीन ली । तब अनायास प्राप्त हुये महाराज रामचन्द्र से सुग्रीव ने सब वृत्तांत कह के प्रार्थना की, कि

नारीप्रीति, सरोगपन, जन्मभूमि का हेत ।
भय अरु आलस दोष ये, नरको बढ़न न देत ॥
नाशमान जब अखिल जग, तब क्यों नाँहिं शरीर ।
यों विचारि तजि मोह को, विचरैं निर्भय वीर ॥
नास्तिकपन को मान करि, प्रभुहिं दूर मत जान ।
खम्भ तें परगट भये, नरहरि भक्त * बचान ॥
न्यायपक्ष अवलम्ब तें, सहज बनें सब काम ।
भयो विभीषण † लंकपति, आश्रय लै श्रीराम ॥

नाथ ! मैं तो उसे मार नहीं सक्ता और आप समझावेंगे तो कलह बढ़ेगा, इससे युक्ति द्वारा उसे मारें तो ठीक होगा । भगवान् ने सोच समझ गुप्तरीति से मारना हित जान ताल के पीछे से बाण मार बाली को तो परलोक भेजा और सुग्रीव को राज्य तथा स्त्री दिलवा कर सुखी कर दिया.

* परमेश्वर के प्यारे प्रह्लाद को राम राम जपते देख उसके पिता हिरण्यकश्यप ने कहा कि रे मूढ़ ! मुझ को छोड़ तू किस का ध्यान करता है, ईश्वर तो मैं हूं जो तत्काल सुख दुःख देसक्ता हूं । इस पर प्रह्लाद ने कहा कि तात ! मैं उसका ध्यान करता हूं कि जिसके लिये शास्त्र यह कहता है:—"यद्भयाद् वातिवातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युर्धावति पंचमः ॥" अर्थात् जिस के भय से यह पवन चलता रहता है, जिसके भय से सूर्य समय पर उगता और अस्त होता है, जिसके भय से इन्द्र बरस कर अन्नादि औषधियों को उत्पन्न करता है, अग्नि जलाता है और पांचवां मृत्यु दौड़ता रहता है, ऐसा कहकर फिर बोला कि पिताजी ! आप तो एकदेशीय हो और वह सब ठौर विद्यमान है अर्थात् आप में, मेरे में, खड्ग खंभ में । इतना सुन उसने क्रोधाविष्ट हो "क्या यहां भी है" यह कहकर थंभे के लात मारी तो तुरंत ही भगवान् ने नृसिंहस्वरूप धारण किये हुए प्रकट होकर उस दुष्ट का संहार किया और भक्त प्रह्लाद की रक्षा की.

† रावण जब सीता को हर लेगया था तब मंदोदरी ने उसे बहुत कुछ

न्यायसमय में रहत सम, शत्रु मित्र में जौन ।
धर्मशास्त्र को मान करि, उत्तम नरपति तौन ॥

निगमागम सांचे नयन, जिनसे प्रभु दिख जात ।
इन नयनों से तो नहीं, देखिसकें निज गात ॥

निज को करतब छोड़ि के, परको देवै सीख ।
ऐसे नर को सर्वथा, माँगी मिलै न भीख ॥

निज घर तें पर गेह में, अर्द्ध निभै आचार ।
अरु चौथायो पन्थ में, स्मृति अस कहत पुकार ॥

निजसुख तजि सुतहित चहै, तासु दशा है येह ।
भाड़ो पाय कुम्हार अरु, भार सहै खरदेह * ॥

निजमति से सुखदायिनी, गुरुमति बिश्वा वीस ।
तासों उनको पूछि के, काम करो अवनीस ॥

निर्जल थल में चिलसहित, सप्तपर्ण तरु होय ।
तो अतिनिकट उतर दिशा, पांच पुरुष पै तोय ॥

समझाया पर उसने एक भी बात नहीं मानी । अन्त में जब लंका जलाकर हनुमान्‌जी पीछे गये, तब भी विभीषण ने बहुत समझाया तो वह हितोपदेश सुन प्रसन्न तो न हुआ, प्रत्युत उसके लात मारी, तब विभीषण ने अन्यायी का पक्ष छोड़ न्यायी का पक्ष लिया, जिसके कारण वह सहज ही में लंकेश्वर बन बैठा.

* धनहित धाय धाय, धाम धाम धन्ध कियो, दियो नहिं दान दुःखदागतें दहानो है । कलम की काती करि, काटि केते केते कान, अंध अज्यों चेत भववारिधि बहानो है ॥ खरच्यो ना खायो ना, खैरखुशी पायो ना, गोविन्द गुण गायो ना, चलत चहानो है । आदित कहत आयो, मूठी मजबूत बांधि, पाछे पछिताय के, पसारि हाथ जानो है.

निर्जल थल में सजल से, चिन्ह कदाचित होय ।
तहां एक पूरुष तले, निश्चय निकसै तोय ॥
निर्जल थल में होय यदि, कहीं हरीभरि घास ।
तो इक पुरुष धरातलें, धन को राखि विश्वास ॥
निर्जल थल में वेत के, तरु तें पच्छिम ओर ।
तीन हाथ पे तीन गज, खोदे जल को घोर ॥
नियम चलाना चाय सो, पहले कर दिखलाय ।
शंख ※ लिखित के चरित में, व्यासदेव समझाय ॥
निजहित सँग ही कीजिये, पर को हित चितलाय ।
आनि भगीरथ † गंग जिमि, सब को दियो तिराय ॥

※ एकवार शंखऋषि से उसका छोटा भाई लिखित (ऋषि) मिलने को गया। वहां उसने बड़े भाई की फुलवाड़ी में से बिन पूछे कुछ फल तोड़कर खालिये। जब यह वृत्त बड़े भाई ने जाना तो क्रुद्ध होकर कहा कि जब धर्मशास्त्र के बनाने वाले हम लोग ही मर्यादा पर नहीं चलेंगे तो फिर दूसरे क्यों चलेंगे। ऐसे कहकर छोटे भाई को सुद्युम्न राजा के पास भेज दिया। वह भी प्रसन्नता के साथ राजा के पास दण्ड भोगने को गया। राजा ने धर्मशास्त्र की आज्ञानुसार जानकर किये हुए पाप का प्रायश्चित्त अंगच्छेदन बताया। जिसके कारण लिखित की अंगुली काटी गई.

† राजा भगीरथ ने हिमालय पर जाकर महादेवजी का बहुत दिनोंतक आराधन किया जब शंकर प्रसन्न हुए तो राजा ने प्रार्थना की कि नाथ ! मेरे पितरों के उद्धार के लिये श्रीगंगाजी को उतारिये। तब महादेवजी ने उस देवनदी का वेग अपने मस्तक पर धारण कर राजा को वर दिया कि मेरी आज्ञा से अब यह जलदेवता जिधर तुम जाओगे उधर ही चला जायगा सो ऐसा ही हुआ कि "यतो भगीरथो राजा ततो गंगा यशस्विनी" अर्थात् जिधर राजा गये

निज दुर्गति कहिये नहीं, जब तक समय न आय ।
नृप नल * को वृत्तान्त यह, भेद सबहिं बतलाय ॥
निज मति को परिचय दियो, एक काम में जौन ।
क्या वह दूजे काम में, साधलयगो मौन ॥
निगुर्ण भी समरथ बनै, उत्तम आसन पाय ।
जैसे बिन्दी आँक से, जुड़कर निधि कहलाय ॥
निन्दा अथवा होय स्तुति, धन आवे वा जाय ।
पै जीवे जबतक सुजन, कहके नहिं पलटाय ॥

उधर ही श्रीगंगाजी भी साथ २ चलती रहीं। इस प्रकार बड़े परिश्रम से इस भरतखण्ड की ओर उस जल का मोड़ कर राजाने केवल अपने पूर्वजों ही का हित नहीं किया, किन्तु सब ही भारतवासियों का कल्याण कर संसार में अखण्ड यश प्राप्त किया.

* अपवित्र रहने के कारण से राजा नल के शरीर में कलि घुस गया था। इससे एक बार उसने जूआ खेली जिसमें अपना सब राज हार गया। फिर राणी दमयंती को साथ ले जंगल में पहुँचा और वहां भी उसे आधीरात को इकली सोती छोड़, आप घूमता २ ऋतुपर्ण राजा के यहां जाकर सारथि बनगया। इधर बिचारी दमयंती जब जगी तो पति को न देख रोती पीटती अनेक कष्ट पाती कई दिनों के पीछे पिता के घर पहुँची। पिताने पहिले ही से दूत भेज दिये थे, जिन में से किसी ने आकर सूचना दी कि राजा ऋतुपर्ण के यहां एक नलकीसी आकृति का पुरुष है पर वह अपना भेद नहीं देता। इस पर राजा भीम ने नल को पहिचानने के लिये दमयंती के स्वयम्बर का निमंत्रणपत्र राजा ऋतुपर्ण ही के पास भिजवाया। राजाने पत्र पढ़ते ही सारथि से पूछा तो उस ने तुरंत उत्साह प्रकट कर राजा को नियत तिथि पर बहुत शीघ्र ही पहुंचा दिया फिर राजाने भलीभांति परीक्षा कराकर नलको जानलिया तो बहुतसा धन तथा दास दासी आदि दे दमयंती सहित निषध देश को पहुंचा दिया.

निर्गुण भी महिमा लहै, दूजे तें कहलाय ।
अरु निजमुख तें इन्द्र हू, गुण कहि लघुता पाय ॥
निर्धन हो हरि नहिं भजै, धनी न देवै दान ।
तो वे क्या फल पायँगे, सो जानै भगवान ॥
निर्बल चालि सुमार्ग पै, लहै लोक में मोद ।
और सबल भी मार्ग तजि, परै विपत की गोद ॥
नीति निपुण नरपाल में, वास करें सब देव ।
तासों चित्त लगाय के, कीजे वाकी सेव ॥
नीरसहू कापीस के, मुझ को बीज * सुहात ।
जिनने जग में कष्ट सहि, ढके सकल के गात ॥
नृप अरु पर्वत दुउन की, वृत्ति एकसी जान ।
दूरहि तें आछे लगें, पास गये भय खान ॥
नृप का मित्र न जानिये, मन में करि निर्द्धार ।
द्रुपद * कियो कहँ द्रोण का, राज पाय सत्कार ॥

* आम्रे के वृक्ष को जो पत्थर से मारें तो भी, देता है अमृतफल अवगुण न आने है । पृथ्वी को पेट फोड़ि, सलिल को निकासत सो, जगत जियावत सो ममता नाहिं माने है। कैतो दुखसहत यह कपास जगसुखकाज, वस्त्र विन कैसी लाज-रैयत जहाने है । कनक पराये काज ताड़न अरु जाड़न सहि, ऐसे उपकारी तो दुख हीको सुख माने है.

† एक समय महात्मा द्रोणाचार्यजी अश्वत्थामा की गोसेवा में अधिक प्रीति देख पुराणे ऋणी राजा द्रुपद के पास गाय लेने को पहुँचे । उन्हें देख राजा ने पूछा कि आप कौन हो ? तब ऋषि ने कहा कि मैं आप का सखा हूं। इस पर राजा ने सगर्व कहा कि "नारथी रथिन: सखा" अर्थात् रथी का मित्र विन रथ वाला नहीं हो सक्ता । इतने वचन सुन ऋषिजी वहां से तो तुरंत लौट आये

नृपसुत तें सीखो विनय, पंडित तें प्रिय वात ।
धूर्तराज तें धौर्य्य अरु, स्त्री तें छल गति तात ॥
पढ़कर चारों वेद को, अरु स्मृति, शास्त्र, पुरान ।
आत्मज्ञान पायो नहीं, तो श्रम निष्फल जान ॥
पग धरते धरती दवै, सात हाथ तहँ खोद ।
जल निकसै मीठो तहां, करके देख विनोद ॥
पढ़ें पढ़ावें वेद अरु, लेवें देवें दान ।
करें करावें यज्ञ ये, विप्र कर्म पहिचान ॥
पढ़ो पुत्र व्याकरण को, आज्ञा मेरी मान ।
नाहिं तो कैसे होयगो, श्वजन स्वजन को ज्ञान ॥
पंडितजन के शीसपै, सव शास्त्रों का भार ।
इस कारण वे काम सव, करत विचार विचार ॥
पंडितजन तृण को करै, थूणी जुगत लगाय ।
तासों नृप संग्रह करहु, बुध जन को समुदाय ॥
पंडितजन की साखते, मूर्ख विज्ञ कहलाय ।
जैसे पारखि के कहे, काच रत्न वनिजाय ॥

और हस्तिनापुर में आकर कौरव तथा पाण्डवों को शस्त्रविद्या पढ़ाने लगे। जव ये सव छात्र शस्त्रविद्या में पारंगत होगये तो गुरुदक्षिणा में इन्हें गांव दिया (जिसे आजकल गुड़गांव कहते हैं यह गुरुग्राम का अपभ्रंश है) और कहा कि महाराज! और कुछ आज्ञा दीजिये। इस पर ऋषि ने राजा द्रुपद को बांधकर लाने की आज्ञा दी। ऋषि के मुख से वचन निकलते ही ससैन्य कौरव और पाण्डव सवके सव उद्यत हो राजा द्रुपद के यहां पहुंचे। वहां इनका परस्पर युद्ध हुआ, जिसमें महावीर अर्जुन ने जीते हुए राजा द्रुपद को बांध गुरुचरणों में लाकर समर्पित किया.

पंडित, साधु तथा नृपति, ये जिस के गुण गाय।
उसका जीवन धन्य है, कहे शास्त्रसमुदाय॥
पतितों को संस्कार से, शुद्ध करै जो जाति।
वाको ह्रास न होत है, स्मृतियां यों समुझाति॥
पंडित की स्थिर चाल को, मूढ़ न सकै हिलाय।
जैसे मणि की कांति को, वायु न सकै उड़ाय॥
पंडित, गायक, भट्ट, कवि, इतिहासी ये पांच।
मिलि चितरंजन जब करें, सभा जान तब सांच॥
पंडित तो संकेत से, समझलेत सब बात।
अरु मूरख समझै नहीं, समझाये दिनरात॥
परकी काया जो दहै, सो पावै दुख पूर।
सुवरण तपा सुनार जिमि, पावै मुख में धूर॥
परनारी के संग से, जितनी घटती आय।
उतनी अन्य कुकर्म तें, कबहुँ न घटती भाय॥
परको आशय देखिके, पंडित कहते बात।
अरु बिन समझें अज्ञजन, कहके पुनि पछितात॥
परगुण को चित में धरे, वाके मित्र अनेक।
पै जो परगुण नहिं गिनै, ताको मित्र न एक॥
परघर जावै अर्थ बिन, कहै अपूछी बात।
ऐसो नर इस लोक में, अवशि मूर्ख कहलात॥
परधन देते समय तो, सब बनिजाय उदार।
पै निज तुस को देखि व्यय, चित में लावत खार॥

परदोषों की खोज में, जितना देवै ध्यान ।
उससे आधा स्वार्थ में, दिये होत कल्यान ॥
परमेश्वर अरु नृपति की, आज्ञा में है फेर ।
वाको फल परलोक में, याको फल इहिँ बेर ॥
पलपलाट लखि खड्गकी, रण में मत डर तात ।
जयलक्ष्मी तीखे नयन, फेंकि तुझे बतलात ॥
पर्वत, रणचर्चा तथा, गणिका के शृंगार ।
आछे लागें दूरतें, पास गये दुखद्वार ॥
पशुओं का सर्वस्व धन, नृप का मंत्री जान ।
नारी का सर्वस्व पति, वेद विप्र का मान ॥
पहिले सोच विचार कर, पीछे प्रण कर नाथ ।
जो कीन्हों तो प्राण अरु, प्रण को रखिये साथ ॥
पक्षी जब प्रियशब्द तें, दाल भात नित पाय ।
तब मनुष्य प्रियशब्द तें, क्यों नहिं चैन उड़ाय ॥
पाकरि के अधिकार यदि, करै न जातिसुधार ।
तो अकार को दूर करि, कीजे द्वित्व ककार * ॥ (धिक्कार)
पाकर घोर विपत्ति भी, करै न कछु अन्याय ।
ऐसो नर निजपुण्य से, निश्चय कष्ट मिटाय ॥ ४०० ॥

* दीनी है प्रभू ने प्रभुता मोज करले ग्वाल कवि, खाना पीना लेना यहां रह जाना है। केतेक अमीर उमराव बादशाह भये, कर गये कूच जिनका लग्या नहिं ठिकाना है॥ हिलो मिलो मेरे मीत, तजि के सब वैरभाव, ज़िन्दगी ज़रा-सी जिसमें दिल को बहलाना है। आवै परवाना बनै एक नाहिं बहाना यातें नेकी करजाना फिर आना है न जाना है ॥

पाय कुसंगति ऊंचहू, नीचसरिस बनिजाय ।
जिमि दर्पण में शैल, वन, छोट से दिखलाय ॥
पाल्यो तोता पींजरे, देकरि मीठे ग्रास ।
खिड़की खोले नेह तजि, उड़िगो बीच अकास ॥
पितृभक्त सुत को अवशि, दुर्लभ पद मिलिजाय ।
नृप ययाति * को चरित यह, सबहिं भेद बतलाय ॥
पुण्यों का फल चाय नर, पुण्य न चावै तात ।
और पापफल चाय नहिं, पाप करै दिनरात ॥
पुत्रवती, प्रियवादिनी, अरु साध्वी स्त्री होय ।
तो समझो संसार में, मुझसम सुखी न कोय ॥
पूजा पावै वक्र जिमि, तिमि नहिं सरल सुभाय ।
दूज चाँद को सब नमैं, पूर्णचन्द्र बिसराय ॥
पूर्वजन्म फल मिलत है, सब को जग के माँहिं ।
देखो रवि के राज्य में, उल्लु हि सूझै नाँहिं ॥
पूछे से भी नहिं कहै, जो कोइ हितकी बात ।
तो उस को नहिं सर्वथा, मित्र समझिये तात ॥

* राजा ययाति बहुत वर्षों तक राजलक्ष्मी भोगता रहा तो भी उससे वह तृप्त नहीं हुआ । अंत में उस ने अपनी आयु को योग की रीति से बढ़ाने को पुत्रों से अवस्था मांगी, जिसपर बड़े लड़कों ने तो उपहास किया, पर सब से छोटे लड़के ने तुरंत संकल्प पढ़ ईश्वर से प्रार्थना की कि प्रभो ! आप मेरी अवस्था में से ये माँगे उतने दिन मेरे पिता को दे दीजिये। पुत्र पुरु की इस आज्ञा पालन से पिता उस छोटे लड़के पर इतना प्रसन्न हुआ कि यथार्थ उत्तराधिकारी बड़े पुत्र को राज्य न देकर, छोटे पुत्र को राज्य दे आप हरिभजन करने को वन में चला गया ॥

पूर्वजन्म के कर्महो, जगमें दैव कहात ।
वे उद्यम आधीन हैं, दृढ़ समझो यह बात ॥
पूर्वजन्म के शुभ-अशुभ, कर्महि दैव कहाय ।
अरु उसके आधीन ही, जीव दुःख सुख * पाय ॥
पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करि, पुनि देवैं उपदेश ।
उनके चरणों में धरो, अपने शिर के केश ॥
पृथिवी तो इक खेत अरु, सागर ताल समान ।
पुरुषार्थी के सामने, अस बतलाय पुरान ॥
प्रकृति देह की मरण अरु, जीवन विकृति भाय ।
अस विचार दृढ़ आनि उर, ज्ञानी नहिं घबराय ॥
प्रखर पवन को वेग जिमि, दीपक तुरत निंदाय ।
तिमि यह काल कराल भी, नरको चट कर जाय ॥
प्रजा सुधारै विज्ञ नृप, अज्ञ बनाय अजान ।
जस राजा तैसी प्रजा, बात सत्य यह, मान ॥
प्रभुको आशय देखि के, चलै यही चतुराइ ।
रुक्मिणि † को माला दिई, नारदमुनि ने जाइ ॥

* जा कछु विधि ने लिख्यो करि के लिलाटपाट ताहीपै आपनो अमल आप करिले । सोने के सुमेरु भावै मारवार मांहि जाय घटै बढ़ै नाहिं यह निहचै में धरिले । देवीदास कहै जोइ होनहार सोई ह्वै है, मन में संतोष रैनदिन अनुसरिले । वापी सर सरिता भरे हैं सात सागर पै, तूंतो तेरे बासन समान पानि भरिले ।

† एक समय नारदमुनि कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला लेकर श्रीकृष्णचन्द्र के महलों में पहुंचे । वहां बहुतसी राणियों को सत्कार के योग्य समझीं तो वे भी पछताने लगे और इधर भगवान् भी संकोच में आगये । फिर सोच समझ

प्रियवादी नर मोर की, देख भाल सब चाल ।
अहिसमान रिपु को निगलि, दुख मिटाय तत्काल ॥

प्रीति घटावै कटुवचन, कुनृप घटावै राज ।
अनरथ कीर्ति घटाय अरु, फूट घटाय समाज ॥

पंगु सरिस घर के रसिक, पंडित मिलें अनेक ।
पै रण में जो दृढ़ रहै, ऐसो सौ में एक ॥

पंक्ति बीच तू बैठमत, बैठे तो मत ऊठ ।
ऋषिजन के इस वाक्य को, कबहुँ न दीजे पूठ ॥

बकने से विपदा मिलै, मौन रखे सुख आय ।
मैना अरु बक की दशा, देखलेउ तुम जाय ॥

बगुलेसम सोचिय अरथ, मृगपतिसम रहु धीर ।
शशसम फुरती राख अरु, वृकसम रिपु को चीर ॥

बड़े बड़े ऋषिराज * अरु, बड़े बड़े भूपाल ।
कालचक्र में इमि पिसे, जिमि घट्टी बिच दाल ॥

बड़ की छाया, कूपजल, तथा ईंट की भींत ।
शीतकाल में उष्ण अरु, उष्णकाल में शीत ॥

बढ़नेवारे का करें, बहुधा लोग बिगार ।
देखु नयन के रोम तजि, काटें शिर के बार ॥

श्रीकृष्णचन्द्र ने श्रीरुक्मिणीजी को ही दिलाना चाहा, जिससे नारदमुनि झट समझ गये और उन्हींको वह माला पहिना दी.

* मंदिर माल बिलास खजाना मेड़ियां, राज और सुखसाज कि चंचल चेड़ियां ।
रहता पास खवास हमेश हजूर में, ऐसे लाख असंख्य गये मिल धूरमें ॥

बन में जनमी छोड़ि बन, बन विचरे दिनरात ।
परायस्त्री गणिका नहीं, लखै सु बुध अवदात ॥ (नौका)

बनि आवे तो दे कछुक, याचक को तत्काल ।
नहिं तो व्यर्थ फिराय के, पर घर तें मत टाल ॥

बल अरु विद्या दुउन को, जहाँ मेल होजाय ।
वहां कार्य सब बनत हैं, स्मृति अस भेद बताय ॥

बल को गर्व न कीजिये, सदा न समय समान ।
रावणसे रणशूर के, कपि ने खींचे कान ॥

बलबुधि तें सूखो मिलै, ताहि गिनो सुखमूल ।
अरु अनीति से अमृत भी, मिलै तु गिन तृणतूल ॥

बहुत द्रव्य जोड़ै उसे, अवशि मिलैं लेवार ।
इन्द्रदत्त * अरु नंद को, चरित बतात पुकार ॥

बातन † तें हीं बनत हैं, जगके सब व्यवहार ।
तासों तिनकी रीति को, सीखिय कर निर्द्धार ॥

---

* कथासरित्सागर में लिखा है कि पटने में श्रीवर्षोपाध्याय के पास वररुचि, इन्द्रदत्त और व्याड़ि ये तीन विद्यार्थी पढ़ते थे। जब ये पूर्ण पण्डित होचुके तब गुरु से अनुरोध किया कि महाराज! आप क्या दक्षिणा चाहते हैं। इस पर गुरु बोले "एक कोटि" इतना वचन सुनतेही राजा नंद को इस योग्य जान इन्द्रदत्त ने वररुचि को अपनी शरीररक्षा का भार देकर आप परकायाप्रवेश विद्या से मरणोन्मुख राजा नंद के शरीर में तुरन्त ही जा घुसा। फिर जब ब्रह्मचारी के भेष में व्याड़ि धन मांगने आया तो उसे यथेच्छित धन देकर बिदा किया ॥

† बातन से देवी अरु देवता प्रसन्न होत, बातन से सिद्ध अरु साधु पतियात हैं। बातन से खान सुलतान अरु नरेश मानें, बातन से मूढ़ लोग लाखन कमात हैं ॥ बातन से भूत और दूत सब तावे होत, बातन से पुण्य अरु पाप होयजात हैं। बातन से कीर्त्ति अपकीर्त्ति सब बातन से, बात करनो आवै तो बात करामात है ॥

वातपुष्ट से जिमि सुखी, कृशतनु मनुज अरोग ।
तिमि अनर्थि धनवान से, सुखी अधन विनभोग ॥

वाम भाग को कुच झुकें, प्रथम गर्भ के काल ।
तो पुत्री उत्पन्न हो, नहिं तो समुझिय वाल ॥

वाँवीयुत निर्गुण्डि से, तीन हाथ दिखणाद ।
दोय पुरुष खोदे मिलै, नीर वड़ो सुस्वाद ॥

वालपने से आजलों, कियो न कछु शुभ काम ।
अव तो शुभमति दीजिये, मुझको सीताराम ! ॥

वालक नरपति को कभी, मन में लघु मत जान ।
मनुजरूप में ईश की, वह है शक्ति प्रधान ॥

वालपने की प्रीति को, वड़े निवाहें लोग ।
मित्र सुदामा * को दिये, कृष्णचन्द्र ने भोग ॥

वाल, वृद्ध, नृप, साधु, गुरु, विज्ञ, अवुध अरु नार ।
इतने को सुननो भलो, उत्तर दिये विगार ॥

वाल्यसमय पितुवश रहै, यौवन पति आधीन ।
सुत के वश वृद्धत्व में, स्त्री नहिं स्ववश कुलीन ॥

विन देखे संसार के, ऊंच नीच व्यवहार ।
पंडित भी चकजाय तो, क्यों नहिं चकै गँवार ॥

---

* अवन्तिकापुरी के गुरुकुलमें सांदीपिनी ऋषि के पास श्रीकृष्णचन्द्र और सुदामा दोनों साथ २ पढ़ते थे । अतः इनके आपसमें परम स्नेह था । जब वे राजा हुए तब दरिद्रता से खिन्न हो सुदामा उनके पास गये । तो उनका उन्होंने वहां बहुत सत्कार किया और जहां वे रहते थे वहां एक नवीन नगर बनवाकर उसका राजा सुदामाजी को बनाय सदा के लिये उन्हें धनाढ्य बना दिया जिसको आजकल सुदामापुरी कहते हैं ॥

बिन पग जाय विदेश को, साक्षर पै बुध नाँहिं ।
अरु मुखबिन बातैं करै, को अस जग के माँहिं ॥ (पत्र)
विना काम पूरो किये, खुले न जिसको भेद ।
ऐसो नर संसार में, कबहुँ न पावै खेद ॥
बिन विद्या * के वीरता, आधो काम बनाय ।
नरपति पृथ्वीराज को, चरित भेद अस गाय ॥
बिन सोचे दुर्बुद्धि को, देवे जो अधिकार ।
वो अपयश अरु हानि सहि, जाय नरक के द्वार ॥
बिन गोरस (दुग्धादि) भोजन कहा, बिन गोरस (पृथ्वी) क्या भूप ।
बिन गोरस (जिह्वा) विद्या कहा, बिन गोरस (आंख) क्या रूप ॥
विना बुलाये धनिक पै, जो पण्डितजन जाय ।
सो नटसम निजचातुरी, पुतली मनहुँ दिखाय ॥
विना पढ़े व्याकरण जो, सभा जीतनो चाय ।
सो मानों गजराज को, कान पकड़िलेजाय ॥
बिना मौत नहिं मरत हैं, खाकरि खड्ग प्रहार ।
अरु ठोकर ही तें मरैं, जब यम करत पुकार ॥
बिन विचार कारज करै, लगै तासु उर आग ।
पछितायो दुष्यन्त † नृप, कण्व सुता को त्याग ॥

---

* शशिबिन सूनी रैन, ज्ञानबिन हिरदो सूनो । कुल सूनो बिनपुत्र, पत्र-बिन तरवर सूनो । गज सूनो बिनदंत, काव्य बिनरस के सूनो । विप्र सूनो बिनवेद, बांसबिन पुहुपर सूनो । सूनो राव सामंतबिन, घटा सून बिनदामिनी । बेताल कहै विक्रम सुनो पतिबिन सूनी कामिनी ॥

† राजा दुष्यन्त ने पहिले कण्वाश्रम में शकुन्तला के साथ गान्धर्व विवाह

बोरड़ि से पूरब दिशा, दीख जाय वल्मीक ।
तो तरु तें पच्छिम निकट, सलिल आठ गज ठीक ॥
बन्धुवृत्ति को कपट तें, जो कोइ छीन्यो चाय ।
वो दुर्योधन सरिस दुख, पाकरि अवशि नसाय ॥
वंशवृक्ष तू वांस को, मत कर कुछ अपमान ।
जो वह मिले कुठार तें, तो होगी बड़ि हान ॥
वंशवृद्धि यदि चाय तो, परमारथ चित धार ।
वड़ पीपल सम वृक्ष को, रोपण करहु उदार ॥
भट्टि, भास, भिक्षुक तथा, भीम गये सुरधाम ।
अब भुकुंड * ही भूप को, देयसकै विश्राम ॥
भद्रपुरुष निज नाथ को, मरणकाल तक आप ।
अधम सीख नहिं देत हैं, जिससे उपजे ताप ॥

तो कर लिया, पर जब वह उसकी राजधानी में आई तो उसे रणवास में नहीं रक्खी, तब शकुन्तला ने लज्जित हो बड़ा पछितावा किया कि हाय ! मैं अग्नि तथा ब्राह्मण की साख से विवाह करती तो वे आज ऐसे समय पर सहारा देते । इस प्रकार वह विविधभांति चिंता कर रही थी कि इतने में उसकी मासी मिश्रकेशी वहां आई और उसे उड़ाकर अन्यत्र लेगई । कुछ समय पीछे जब राजा को वह बात स्मरण आई तो वह इतना पछताया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता.

* राजा भोज के समय में संस्कृत का इतना प्रचार था कि एक समय किसी चोर को पकड़ के लाये तो उसने बचने के लिये कविता बनाकर प्रार्थना की कि महाराज ! भट्टि, भास, भिक्षुक तथा भीमसेन को मार कर यमराज दीर्घ ईकार तक तो आ पहुंचा है अब मेरे नाम (भुकुण्ड) में ह्रस्व उकार और आप (भूप) दीर्घ ऊकार वाले हैं सो जबतक मैं बना रहूंगा तबतक तो आप भी बचे रहेंगे और नहीं तो मेरे पीछे आपकी वारी है । इतना सुनते ही सब सभा हँस पड़ी कि जिसके कारण राजा को उसे छोड़ना ही पड़ा.

भय मत कर तूं मृत्यु को, भय तें क्या बचिजाय ।
जन्म न हो अस यत्न कर, वह जनमे को खाय ॥
भयो सिद्ध मैं भुवन बिच, दारिद ! तोकों पाय ।
कोइ न मोकों लखि सकै, सब मोहि परत लखाय ॥
भाग बड़ो विद्या नहीं, बात यही सच मान ।
धनिकद्वार डोल्यो करैं, बड़े बड़े गुणवान ॥
भारत, बीणा, मित्र, स्त्री, काव्य, गीत, सत्संग ।
अरु प्रियवार्ता मनुज को, तुरत दिलाय उमंग ॥
भाषण से शिक्षा मिले, उसको विद्या मान ।
और मूक भी करि सकै, उसे कला पहिचान ॥
भील * पुरोहित को तनुज, राम राम करि जाप ।
अद्वितीय कवि बन गये, जिन की सब पै छाप ॥

* ऐसा कहते हैं कि महर्षि वाल्मीकिजी के घराणे में भीलों की पुरोहिताई थी. इनके माता पिता लड़कपन ही में मर गये जिससे वे भीलों के सहवास से चोरों के साथ रहने लगगये । वहां संयोगसे एक दिन जब सप्तर्षियों का आना होगया तब उन्होंने उस बालक की चेष्टा से उसे होनहार जान पास बुलाकर पूछा कि तू लूट खसोट से जो धन इकट्ठा करेगा उसका पाप घर वाले भी भोगेंगे या नहीं ? बालक इस बात को सुन चोरों के घर वालों के पास जाकर बोला कि तुम जैसे खाने में मेरे साथी हो वैसे पाप के फल भोगने में भी मेरा साथ दोगे या नहीं ? इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि पाप का फल तो तेरा तू ही भोगेगा, हम तो सुख के साथी हैं । इतनी बात के सुनते ही उनके हृदय में तुरंत ज्ञान उत्पन्न होगया और पीछे आकर ऋषियों के पैर पकड़ क्षमा मांगी फिर ऋषियों ने राममंत्र का जप बताया, जिसको जपते २ वे ऐसे सिद्ध होगये कि जिनको सब संसार "आदिकवि" कह के पुकारता है.

भूरा मेंडक हाथ दो, खोदे यदि मिल जाय ।
पुनि पीले पुट को उपल, तव निश्चय जल आय ॥
भैरव, दीपक, मेघ अरु, मालकोस हिंडोल ।
पुनि श्रीराग मिलाय के, मुख्य राग छै बोल ॥
भोगों का उपभोग तें, अन्त कवहुँ नहिं आय ।
पावक में घृत डारिकर, देखलेउ तुम भाय ॥
भोजन उतनो कीजिये, जितनों सको पचाय ।
अधिक करोगे तो अवशि, दुख पावोगे भाय ॥
भोजवृत्त परकाज में, देत त्वचा को दान ।
अरु सण पर बन्धननिमित, तजें आपके प्रान ॥
भोजन को आदर करिय, जीमिय ताहि सराय ।
अरु अवगुण नाहिं गाइये, स्मृति अस भेद बताय ॥
भौंरे चाखें पुष्परस, हंस खाँय शैवाल ।
जग में सब तें अलग है, विधि की अद्भुत चाल ॥
मच्छी आधे पुरुष पै, नील पथर अरु गार ।
निकसे तो उस कूप में, जल ठहरै बहु बार ॥
मणि वेधत जहँ लोह की, टूटै बड़ी सलाइ ।
तहँ नारी नख को लिखन, कैसे काम वनाइ ॥
मधु में बींट कपोत की, मिला नाभि पर राख ।
तो रेचन होवै तुरत, अस वैद्यक की साख ॥
मन, काया अरु वचन तें, करके उत्तम काम ।
प्रभु के अर्पण जो करै, भक्त उसीको नाम ॥

मन, मर्कट, मधुकर, मरुत, मेघ, मानिनी, मीन ।
मा अरु मन्मथ ये नवों, चपल मकार प्रवीन ॥ (मा=लक्ष्मी.)
मन में यदि होवै दया, अरु वाणी में साँच ।
तो फिरलो सब देश में, कभी न आवै आँच ॥
मन, वाणी जिसकी सदा, शुद्ध सुरक्षित होय ।
चार धामका पुन्यफल, पायसकै नर सोय ॥
मन, मोती अरु काच को, ऐसो अमिट स्वभाव ।
टूटि जुड़े नहिं सर्वथा, किये अनेक उपाव ॥
मन, वाणी अरु कर्म में, सुजन सदा इकरंग ।
पै खल मन, वच, कर्म में, रखत निरालो ढंग ॥
मरण प्रकृति है देह की, जीवन विकृति पिछान ।
शोक कबहुं नहिं कीजिये धारि हृदय अस ज्ञान ॥
मरघट, मैथुन अरु कथा, इन तीनों के अन्त ।
जैसी मति तैसी सदा, रहे मिलै भगवन्त ॥
महिमा सब की बढ़त है, देखत नीचे लोग ।
अरु सब की महिमा घटै, देखि ऊपरी भोग ॥
महुआ और बिजौर जड़, मधु घृत सहित मिलाय ।
खावै तो नारी जनै, पुत्र सहज में भाय ॥
मात, पिता, आचार्य को, करै जु नर अपमान ।
वो अवश्य पावै नरक, भाषैं वेद पुरान ॥
मात, पिता अरु देश को, तजि के धन के काज ।
मरघट में वासो करै, ऐसो धन महाराज ॥

मात पिता गौ, विप्र को, कष्ट देत नर जौन ।
नरकवास पावै अवशि, बहुत वर्ष लों तौन ॥
मात, पिता, घर एक से, तौ भी सुत न समान ।
अस लखि होत प्रतीति जिय, निश्चय कर्मप्रधान ॥
मात पिता आचार्य को, चित लगाय के सेव ।
इन तीनों की तुष्टि तें, तुष्ट होयँ सब देव ॥
मात, पिता, भ्राता प्रभृति, कोइ न जासु सहाय ।
अस अनाथ को दुख हरै, सो अवश्य सुख पाय ॥
मिसरी घृत अरु दूध में, घोल तुरंत पिलाय ।
तो सँखिया को विष घटै, अस वैद्यक बतलाय ॥
मुक्ति मिलै नहिं ज्ञान बिन, शौर्य बिना नहिं जीत ।
धैर्य बिना लक्ष्मी नहीं, मिलै समझ ले मीत ॥
मूर्ख देखिके मूर्ख को, मन में आनँद पाय ।
अरु पण्डित को नाम सुनि, तुरत खिन्न हो जाय ॥
मूर्खभृत्य, स्वामीकृपण, धूर्त्तमित्र अरु नारि ।
इन चारों का योग जहँ, तहँ निश्चय दुख भारि ॥
मूषक की लघुचामहित, गिरि को खोदन जाय ।
ऐसो नर संसार में, अवशि मूर्ख कहलाय ॥
मृगया, नारी, द्यूत, मद, कटुवाणी, अन्याय ।
अरु अपव्यय ये दोष नृप, तजि दे तो सुख पाय ॥
मृगपति ने पाणिनि भख्यो, गिल्यो पिंगलहिं नक्र ।
जैमिनि को करिने हन्यो, प्रबल दैव को चक्र * ॥

* पंचतंत्र में लिखा है कि व्याकरण शास्त्र के आचार्य्य पाणिनि मुनि को

मैंदी के रस में रुप्यो, बुझा आठ नो बार ।
पुनि पत्ते अधसेर में, गजपुट दीन्हें छार ॥
मैं हूं संपतिशिखर पै, अस विचार मत लाय ।
ऊंचे तें गिरजाय तो, हड्डी एक न पाय ॥
मोती ! तू यदि कामिनीकंठत्रास सुख चाय ।
तो गुण के संग्रह विना, नाहि है आन उपाय ॥
मौत, दरिद्र इन दुउन में, दरिद्र बड़ो दुखदाइ ।
क्योंकि मोत दुख देत चण, अरु यह सदा सताइ ॥
मोच्च मांगिये विष्णु तें, शिव तें मांगिय ज्ञान ।
रवि तें मांगिय स्वास्थ्य अरु, पावक तें धनधान ॥ ५०० ॥
यज्ञ, दान, तप, तीर्थ सब, तिनके व्यर्थ लखात ।
जिनके मनमें नहिं वसै, श्रीपतिपदजलजात ॥
यदपि वृच्च छोटे बड़े, बन के बीच अनेक ।
तदपि सुगंधित करन को, इक चंदन की टेक ॥
यदपि सैन्य में काम के, रथ हाथी अरु वीर ।
तदपि काज नहिं बाजि विन, सफल होय रणधीर ॥
यदपि शास्त्र सब नरन के, हितकारक हैं मीत ।
तदपि मोर मत तो यहै, उत्तम सबसों नीत ॥
यदपि हंस का मधुररव, सबके चित को चोर ।
तदपि सुजन का प्रियवचन, उसका भी सिरमौर ॥

सिंह ने तथा मीमांसा के रचयिता जैमिनि मुनि को और हाथी ने छन्द शास्त्र के प्रणेता पिंगलाचार्य को मगर ने मारा था.

यदि जामुन के वृक्ष के, निकट साँप बिल होय ।
तो गज डोढ़ दिखन दिशा, दुपुरुष नीचे तोय ॥
यदि नरपति होवे नहीं, प्रजा सम्हालन जोग ।
तो बिन नाविक नावसम, डूबि जाँय सब लोग ॥
यदि नृप होवे लोभयुत, तो धन दे रख गात ।
काटि लोम अज को तजै, तो क्या बड़ी न बात ॥
यदि हो बैर बड़ेन सूं, तो मत रहो अचेत ।
लगी लाय पै सोय तो, कैसे बचिहै खेत ॥
यदपि नाथ ! शुभदृष्टि कर, बरसावो धनमेह ।
तदपि सोस लेवै तुरत, सिकतामय मम गेह ॥
यह घर को यह बारलो, यह क्षुद्रों की रीति ।
पै उत्तमजन रखत हैं, सबही सों समप्रीति ॥
युद्ध करें पशु पक्षिगण, पढ़ें कीर उपदेश ।
पै जो दानी * है उसे, गिन भट सूरिविशेष ॥
युवा पुरुष को धर्म है, आवत वृद्धहिं देख ।
खड़ो होय आदर करै, शास्त्रों में अस लेख ॥
योग्याऽयोग्य विचार तजि, जो झूंठी स्तुति गाय ।
सो अवश्य इस लोक में, क्षुद्रपुरुष कहलाय ॥
रक्त छांड़ि पयको गहै, जिमि गैया से बच्छ ।
तिमि गुण को अर्जन करै, चतुर धारि अस लच्छ ॥

* सुंदर शरीर होय, महारणधीर होय बीर होय, भीमसो लरैया आठों याम को ।
गरवा गुमान होय, बड़ो सावधान होय, सान होय साहसी, प्रतापी पुंजधाम को ॥
पढ़त अमान, जो पै मघवा महीप होय, दीप होय वंश को, जनैया सुख श्याम को ।
सर्वगुणज्ञाता होय, यदपि विधाता होय, दाता जो न होय तो हमारे कहा काम को ॥

रण तें भागे मनुज के, पीछे मत पड़ धीर ।
को जाने वह मौत लखि, बनिजावै पुनि वीर ॥
रत्न अपरिमित पायके, सागर नाहिं गर्वाय ।
अरु मोती दस बीस तें, गज मदांध होजाय ॥
रत्नखण्ड शोभा लहै, जिमि कनकासन पाय ।
तिमि पण्डित महिमा लहै, राजसभा को जाय ॥
रत्न तीन हैं धरणि पै, अन, जल, मीठो बोल ।
मूरखजन पाषाणको, रत्न कहत अनमोल ॥
रथ, नौका, पशुपीठ, तरु, नदी पुरुष समुदाय ।
अरु तृण इतनी ठौर पै, स्पर्शदोष कछु नाँय ॥
रविकिरणन तें तप्तगज, लेत जहां विश्राम ।
तोरै वाही वृक्ष को, करै दुष्ट तस काम ॥
रविमंडल को बेधकरि, योगी अरु रणशूर ।
सीधे पहुँचे स्वर्ग में, जहँ सबसुख भरपूर ॥
राज अगनि इस अगनि तें, अधिक भयप्रद भाय ।
उससे भगिकर बचि सकें, इससे भग्यो न जाय ॥
राजकथन मानै प्रजा, प्रजाकथन को राज ।
ऐसे थल में जो बसै, सो पावै सुखसाज ॥
राजकृपा को सर्वदा, सानुकूल मतजान ।
कारागृह शकटार को, दियो नंद * प्रियमान ॥

---

* पटने के महाराजा नंद की अपने मंत्री शकटार पर बड़ी कृपा थी, परन्तु वह पुराणा होने के कारण मन में बड़ा अभिमान रखता था और राजा को कुछ नहीं

राजा, मंत्री, विप्र, नख, दंत, केश, अरु नारि ।
स्थानभ्रष्ट सोहैं नहीं, बुधजन कहैं पुकारि ॥
राजमित्र की प्रजा रिपु, प्रजामित्र को राज ।
पै जो सब में होय सम, वो मंत्री शुभकाज ॥
राजसभा में जायकर, बनो न तुम वाचाल ।
गारी दे श्रीकृष्ण को, मृत्यु लही शिशुपाल * ॥
राजसभा में पाय पद, तज देवे अभिमान ।
ऐसो नर चिरकाल तक, भोगै विभव महान ॥
रातसमय दीपक शशी, दिन को दीपक भान ।
त्रिभुवन दीपक धर्म अरु, कुल दीपक गुणवान ॥
राजाज्ञा पंडितशपथ, अरु कन्या का दान ।
एक बार ही के कहे, लोकी लीकसमान ॥
रात समय निःशंक हो, अधिक न घूमो भूल ।
चोर जान मांडव्य को, रोप्यो रक्षक शूल ॥
रावण बंधुहिं त्रास दे, कैसे सहे बिगार ।
तासों सब को उचित है, तजनी घरकी रार ॥

गिनता था । इस पर किसी समय अप्रसन्न होकर राजा ने उसके सब अधिकार छीनकर उसे कारागार में रख दिया था। इस विषय में एक मारवाड़ी कहावत भी है कि राज की "आस करणूं पर आसंगो नहीं करणूं" ॥

* महाराज युधिष्टिर के यज्ञ में जब बड़े २ महानुभावों के तिलक का समय आया तो सब ही ने श्रीकृष्णचन्द्र का नाम बतलाया। इस पर चँदेरी का राजा शिशुपाल क्रुद्ध हो जब अंडबंड बकने लगा तब श्रीकृष्ण उसकी गालियें सुनकर बोले कि हे सभ्यो! सौ गाली तो मैं सुनूंगा और फिर नहीं सुनूंगा सो ऐसा ही हुआ कि जब सौ से ऊपर गाली हुई कि तुरंत चक्र से उसका सिर काट परलोक को भेजदिया.

रिपु तो उन्नति पाय. अरु, अवनति पावे आप ।
तो उद्यम को मित्र करि, अवशि मिटाइय ताप ॥
रिपु निःशेष न होत हैं, भल असंख्य रिपु मार ।
एक क्रोध के नाश तें, रिपु न रहै संसार ॥
रिपु के प्रिय को कीजिये, पहिले वशमें तात ।
जैसे धरती खोदते, आप वृक्ष गिरजात ॥
रिपु के वैरी को करो, पहिले अपनो मीत ।
अस विचारि के कर्ण तें, करी सुयोधन प्रीत ॥
रिपुमण्डल में मोहवश, एकाकी जो जाय ।
वो विनसै अभिमन्यु* सम, भारत भेद बताय ॥
रिपुहू के गुण लीजिये, तजिये गुरु के दोष ।
अस उत्तम पथ को पकरि, चतुर लहैं संतोष ॥
रूखो सूखो खायके, करै ईश को ध्यान ।
राग द्वेष राखे नहीं, ताहि साधु पहिचान ॥
रिपु को साहस नहिं चलै, और जरा नहिं आय ।
ये दो गुण व्यायाम के, आयुर्वेद बताय ॥
रूपरहित दानी भला, कृपण न रूप निधान ।
कृष्णमेघ जिमि काम का, तिमि नहिं श्वेत सुहान ॥
रे चातक ! जग में तुही, घन को सांचो मीत ।
जब मांगे जब जलद पै, नातरु रहै निचीत ॥

* महाभारत के युद्ध में अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु लड़ता २ कौरवों के दल में जा पहुंचा तो वहां उसका कोई भी सहायक नहीं था अतः अकेले उस लड़के को कर्ण आदि महारथियों ने मिलकर मारडाला.

रे तरवर ! निजवंश को, मतकर तू अपमान ।
जो वह परसा से मिले, तो होगी तव हान ॥
रे दव ! जिमि तू अन्य को, वंश जलातो जाय ।
तिमि महेन्द्र तव तेज को, वारिद भेजि नसाय ॥
रे मन ! प्रतिदिन ईश को, धरतो रह तू ध्यान ।
पाप कटेंगे सहज में, जिमि रजु तें पापान ॥
रे पंकज ! मत सोच कर, कथन हमारो मान ।
पुनि वैसी छवि पायगो, जब निकसेगो भान ॥
रे वक ! * तैने हंस के, सब गुण लिये चुराय ।
पै जल दुग्ध विवेक तो, जन्म विना नहिं पाय ॥
रे मन ! क्यों भटकत फिरै, तजि नारायण नाम ।
पल में पूरण करिसकै, तुष्ट बहै सब काम ॥
रे मूरख ! † धन पायके, मत कर इतना मान ।
समय सदा नहिं एकसो, देख चन्द्र अरु भान ॥

---

* गोवन के जाये सोतो घर ही के बीच रहैं, गधिया नहिं धेनु होत गंग के न्हिलाये तें । सिंहन के जाये ताकी ऐरावत आन मानें, श्याल नाहिं सिंह होत मांस के खिलाये तें । हंसन के जाये तो पीवत मधुर पय, बगुले नाहिं होत हंस पय के पिलाये ते । कहै गायक तानसेन सुनो अकबरशाह बात, नफ़ा नाहिं होत खल ऊंच पद के पाये तें ॥

† कबहूंक बाग हाथ बाजते नगारे साथ कबहूंक पयादे पांव शीस बोझ सहिये । कबहूंक आप द्वार भीख दै भिखारिन को कबहुंक परद्वार याचनों ही चहिये ॥ कबहुंक मेवा अरु आम से अजीर्ण होत, कबहुंक मूठी भर चने ही चबाइये । हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरिनाम, जाहि विधि राखै राम ताही विधि रहिये ॥

रे वारिद ! मारग ढके, तुमसे सोतो ठीक ।
पै रजनीपति को ढकन, सबको लागै फीक ॥
रे विष ! तू कडुवास को, मत कर इतनो मान ।
पै तुझसे भी अधिक कटु, है खलजन की वान ॥
रोग, शोक, विष, भूख, तिस, शस्त्र और जलपात ।
इनको पाय निमित्त यह, जीव देह तजि जात ॥
रोटी सेक चिताग्नि में, मिरगीवाला खाय ।
तो थोड़े दिनमें मृगी, रोग अवशि मिटिजाय ॥
लक्ष्मी अरु पृथ्वी तजै, अपने पति को संग ।
पै पतिव्रत पालन करे, कीर्ति सदा इकरंग ॥
लक्ष्मी आवै धनिक पै, तापस बुध पै नाहिं ।
देखो गंगा सिन्धु तें, मिली शंभु सिराहिं ॥
लक्ष्मी आवै भाग्य तें, मांगेतें नहिं आय ।
देख श्वान निसदिन भगै, तो भी भूख सताय ॥
लक्ष्मी किसकी अचल है ?, वेश्या कौन पुनीत ? ।
काया किसकी नित्य है ?, राजा किसका मीत ? ॥
लक्ष्मीका तो शुभसदन, मिला मित्र ताइ सूर ।
गुणगायक भँवरे मिले, कमल सुखी भरपूर ॥
लक्ष्मी निजगृहकमल में, रहै न जब दिन रात ।
तब परगृह कब थिर रहे, इइ समझो यह बात ॥
लक्ष्मी पाये होत मद, बात सत्य यह मीत ।
जो औषधिपति से रहे, कमल सदा विपरीत ॥

लख चौरासी योनि तें, मानुषतन सिरमौर ।
इसे पाय प्रभु नहिं भज्यो, वाको कहीं न ठौर ॥
लाख बीज में बीज इक, महा वृक्ष बनिजात ।
तैसेको इक वंश में, सुत जनमत अवदात ॥
लाय विधर्मी पुरुष को, निजमत में समुझाय ।
ऐसे जहँ आचार्य हो, वही पन्थ जय पाय ॥
लालमिरच चालीस दिन, निम्बू के रस मांहिं ।
घोटि रती दो पान में, लिये भूख खुल जांहिं ॥
लिखित विषय ही पै करे, राजा प्रजा प्रतीत ।
तासों सब व्यवहार को, लखबद्ध रख मीत ॥
लूटत गणिका कामि को, लोभी को ठग लोग ।
लूटत काल चराचरहिं, भोगी को सब भोग ॥
लेत प्रजा से भूप जो, अनुचित कर को दान ।
सो रावणसम * पाय दुख, कहें पुकारि पुरान ॥
लेय बहुत देकरि अलप, चतुरन की यह चाल ।
पुष्पक दे अलका लही, रावण तें धनपाल † ॥

* एक समय रावण ने सब प्रजा से कर ग्रहण करना आरम्भ किया तो उसमें उसने ऋषियों से भी कर मांगा । ऋषिजन तो अदण्ड्य होते ही हैं उन्होंने इस अनुचित व्यवहार से असंतुष्ट हो सर्वसम्मति से अपनी २ जांघ चीर उसमें से थोड़ा २ रुधिर निकाल एक घड़ा भर रावण के पास भेज दिया और कहलाया कि इसी के द्वारा तेरी मृत्यु होगी सो ऐसा ही हुआ कि उसी में अयोनिजा श्रीजानकीजी प्रकट हुईं और उसी के कारण रावण का नाश हुआ.

† जब रावण दिग्विजय करता हुआ अलकापुरी में आया तो कुवेर ने अपनी युक्ति से नगरी को तो बचाली और उसको पुष्पक विमान दे अपने स्थान को लौटाया.

लेय बहुत देवै अलप, कमडल की अस रीत ।
देखि चलै उस पुरुष तें, लक्ष्मी करती प्रीत ॥
लेवै देवै प्रीति सों, कहै सुनै सब बात ।
खाय खिलावै ये छहों, मित्र लछन हैं तात ॥
लोक और परलोक में, जो तूं सद्गति चाय ।
तो आचरण * सुधारले, यह इक सुगम उपाय ॥
लोण, मिरच, मधु, घृत तथा, निंबोली सम पाय ।
तो विषमूर्छित नर तुरत, जागि अवाशि बतलाय ॥
लोक और परलोक को, साधन कीजे साथ ।
तपसी द्रोणाचार्य † ने, लियो शराशन हाथ ॥
लोकलाज तें डरत हैं, बड़े बड़े नरपाल ।
देखो मणि को खोजकर, ला दीन्हीं नँदलाल ‡ ॥

---

* फुरती यदि चाहै तो प्रात उठिके स्नानकर, धनी हुयो चाहे तो धर्मको बढ़ायरे ।
जीयो तू चाहे तो जीवन की रक्षा कर, यती हुयो चाहे तो इन्द्रियवश लायरे ॥
भाग्यो तू चाहे तो भाग बुरे कार्मों से, आयो तू चाहै तो कृष्णशरण आयरे ।
नाच्यो तू चाहे तो नाच रघुनाथ आगे, गायो तू चाहे तो गोविन्दगुण गायरे ॥

† सकलशास्त्रों के ज्ञाता द्रोणाचार्यजी ने भी तपश्चर्या के अंत में अर्थाभिलाषी होकर क्षात्रधर्म तथा राजसेवा स्वीकार की थी, अतएव बुद्धिमान् पुरुष समय पर धर्म तथा अर्थ दोनों ही का साथ २ निर्वाह किया करते हैं.

‡ सूर्य की तपस्या से सत्राजित यादव को एक मणि मिली थी, जिसको धारण कर एक समय वह यादवों की सभा में गया था । वहां श्रीकृष्ण ने साधारण रीति से कहा था कि ऐसी वस्तु यदि महाराज उग्रसेन के पास रहे तो बहुत अच्छी बात हो । कुछ समय बीतने पर उसका भाई प्रसेन मणि को धारण कर जंगल में गया तो वहां उसे सिंह ने मारडाला । पर सत्राजित ने

लोकलाज से वो डरै, जो कुलीन नर होय ।
अरु जाकी पै होय नहिं, मन में निर्भय सोय ॥
लोभ और पाखंड को, जिसमें लेश न होय ।
ऐसे गुरु तें प्रश्न करि, संशय दीजे खोय ॥
वस्तु पराई मूर्ख के, चित को लेवै चोर ।
अरु पंडित के चित्ततक, जाकर पाय न ठौर ॥
वास करन को कन्दरा, भोजन को फल कंद ।
ओढ़न को बल्कल वसन, जिनके वे स्वच्छंद ॥
विगुण धर्म निज सेइये, पर सुधर्म तजि तात ।
मरण भलो निज धर्म में, गीता यों बतलात ॥
विद्या और कुलीनता, इन दोतें क्या होय ।
सदाचार तीजो मिलै, तब पूजें सब कोय ॥
व्यग्र, भीत, रोगी, अधन, अरु दुखिया कोइ आय ।
उसको स्थिरता देय सो, अवशि पुण्यफल पाय ॥
विधि की गति है बलवती, यामें संशय नाँहिं ।
जनकसुता दशरथवधू, रही राक्षसिन माँहिं ॥
विधि ते प्रेरित वस्तु को, अवशि शीस पै धार ।
नृप ययाति ※ ने कविसुता, कर लीन्हीं स्वीकार ॥

मोहवश वह भरम श्रीकृष्णजी का धरा, जब यह वृत्त महाराज को विदित हुआ तो उन्होंने खोजकर बड़ी कठिनता से एक गुफ़ा में जाय वहां उसके स्वामी से लड़, विजय पाय, मणि लाय, सत्राजित को दे, अपना कलंक मिटाया.

※ राजा ययाति यद्यपि ब्राह्मण न थे तो भी दैवयोग से वन में मिली हुई शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से निःशंक हो व्याह करलिया, अतएव दैवकी इच्छा से जो काम हो उसे अवश्य स्वीकार करना चाहिये.

विविध देश घूमै नहीं, सेय न बुधसमुदाय ।
उसकी मति जल बीच घृत, सम ठिठकत है भाय ॥

विपदा में धीरज धरै, सुख में फूलै नाहिं ।
यश में रुचि, श्रुति में व्यसन, राखे संत कहाहिं ॥

विपदा में नहिं भूलिये, दीनबंधु को नाम ।
शरशय्या में भीष्म * ने, रट्यो कृष्णगुणग्राम ॥

विप्रवंश को मान नर, जो तू निजहित चाय ।
जिनने उत्तम ग्रंथ रचि, कीन्हीं धर्म सहाय ॥

बिरले जन † वैराग्य में, जिन्हें न रंग सुहाय ।
पै लाखों नर नारि के, मन में उत्सव भाय ॥

विप्र, वेद, कन्या, अनल, अन्न, देव अरु गाय ।
इनको पगतें जान करि, छूवै सो दुख पाय ॥

विषधरतें भी विषम खल, बात मोरि सच मान ।
उसे नकुल को शत्रु अरु, इसे सकुल को जान ॥

* भीष्मपितामहाभारत के युद्ध के पीछे तक भी जीवित रहे थे । वे बाण शय्या पर लेटे २ वृद्धसेवार्थ आये गये युधिष्ठिरादि राजाओं को धर्मोपदेश देते थे और आप भी ऐसी दशा में सदा सर्वदा हरिस्मरण किया करते थे । जब उत्तरायण का सूर्य हुआ तब वे समाधि द्वारा अपने प्राण त्यागकर वैकुण्ठ-धाम को सिधारे.

† करम की नदी जामें भरम के भौंर पड़ें, लहरें मनोरथ की कोटिन गरत हैं ।
काम अरु शोक मद मोह से मगर तामें, क्रोध से फनिन्द जामें देवता डरत हैं ॥
लोभ जल पूरण अखंडित अनन्य भने, देखि अस समुद्र नर धीरज ना धरत हैं ।
ब्रह्मज्ञान सत्य ऐसो ज्ञान को जहाज साजि, अगाध भवसागर को बिरले ही तरत हैं ॥

विहरें मृग सँग मृगन के, गैयन के सँग गाय ।
अपनी अपनी जाति से, मिलनों सबहिं सुहाय ॥
वीर तजै नाहिं वीरता, रिपुगण में इक जाय ।
देखो मारुति एक ने, दीन्हीं लंक जराय ॥
वृक्ष ! कुजन्मा तोर यह, सांचो है अभिधान । (कु०पृथ्वी)
जो तू निज फल पत्र को, पटकि करत है म्लान ॥
वृद्ध पच्यासी वर्ष को, द्रोण समर में आय ।
ऐसी फुरती से चल्यो, मानों बालक जाय ॥
वृत्ति सलिल सम विप्र की, बात सत्य यह मीत ।
तातो होवै अग्नि तें, समय पाय पुनि शीत ॥
वेत तुल्य नमकर चलै, वह जग में सुख पाय ।
अरु अकड़ै जो सर्पसम, वो झट मार्यो जाय ॥
वेदपठन, इन्द्रियदमन, दान, धर्म, तप, ज्ञान ।
सदा आत्मचिंतन इते, कर्म सत्वगुण मान ॥
वेद, शास्त्र पढ़ि बुद्ध * ने, यह पायो सतज्ञान ।
जीवदयासम पुण्य नाहिं, पाप न झूठ समान ॥

* परंपरा से सुनते आये हैं कि मगधदेश के राजा जरासन्ध के वंशजों में से कोई राजकुमार विरक्त होकर वन में चले गये थे। उन्होंने कुछ समय के पीछे ज्ञान संपादन कर, हिंसा की प्रवृत्ति देख, वैदिक सिद्धांत के आधार पर "अहिंसा परमो धर्मः" इस महावाक्य का प्रचारकर एक नवीन मत लोगों के कल्याणार्थ स्थापन किया था। जिस पीछे वैदिकमत यहां दो विभागों में विभक्त होगया। एक तो वे जो वैदिक कर्मकलाप करते यदि हिंसा भी होजाय तो उसको पाप नहीं समझनेवाले और दूसरे वे कि "सर्वारंभाहि दोषेण धूमेनाग्नि रिवावृताः" अर्थात् सब आरंभों में कुछ न कुछ दोष अवश्य होते हैं, जैसे

वेद, विप्र, पृथिवी, सलिल, स्वर्ण, नारि अरु गाय ।
इनकी निन्दा जो करै, वह अवश्य दुख पाय ॥ ६०० ॥

वैद्य, विप्र, वेश्या, नृपति, चरणायुध ÷ अरु श्वान ।(÷ कुक्कुट)
इतने अपनी जाति को, लखिके होत मलान ॥

शत्रु, मित्र अरु बुध अबुध, जिसको करत बखान ।
ऐसो भाषण जो करै, सो नर अवशि सुजान ॥

शम, विवेक, संतोष अरु, साधुसंग ये चार ।
मुक्तिप्राप्ति के द्वार हैं, ऋषिजन कहत पुकार ॥

शयन और भोजन करै, जो कोइ सन्ध्याकाल ।
उसको लक्ष्मी तजत है, इमि भाषै गोपाल ॥

शरणागत को दीजिये, अवशि अभय को दान ।
देखो नृप शिवि * को चरित, कहत पुकारि पुरान ॥

धूएं से वेष्टित अग्नि, ऐसा विचारकर सब कर्मों से अलग रहकर काम चलाने वाले । इस पर उस समय के ब्राह्मणों ने उनको और उनके अनुयायियों को बहुत कुछ समझाया कि हे महानुभावो ! मन्वादि स्मृतिकारों ने जो वर्णाश्रम व्यवस्था बाँधी है उसके अनुसार चलता हुआ मनुष्य अंत में स्वयमेव मन, वचन, काया से हिंसा का त्यागकर कल्याण को पा सक्ता है और आपके कथनानुसार सब संसार विरक्त होकर मोक्ष पाजाय यह बात सर्वथा असंभव है, यह बात उनके शिष्यों ने तो उस समय नहीं मानी, पर पीछे जाकर लोगों ने अहिंसाव्रत पालन का तो लक्ष्य रखलिया और स्मृतिकारों के कथनानुसार वर्णव्यवस्था के नियम उलट पलट मान कर वे अपना काम चलाने लगे.

* राजा शिवि जब ९२ वृहद्यज्ञ कर चुका तब उसकी परीक्षा करने के लिये अग्नि तो कबूतर और इन्द्र श्येन बनकर उड़ते २ राजा के पास आ पहुंचे । राजा ने कपोत को शरण में आया जान विचार किया कि यदि दुष्ट जीव

शरपुंखा को कूटकर, लूण मिलाकर पाय ।
तो पशु के फोड़े मिटें, अस वैद्यक बतलाय ।

शरणागत के त्राण में, तृण को प्रण दृढ़ जाण ।
जो उसको मुख में धरै, ताके राखै प्राण ॥

शक्ति होय तो भी नहीं, वृथा कीजिये राड़ ।
जान बूझ ज्यों वैश्यसुत, कूदै जाय पहाड़ ॥

शस्त्रघाव मिटजात है, अधिक समय को पाय ।
पै वाणी को घाव नहिं, मिटै मरण तक भाय ॥

शव को तजि के काठ सम, जब सब निज घर जायँ ।
तब तो इकलो धर्म्म ही, आगे होत सहाय ॥

शाल दुशाले अबुध को, तब तक मान दिलाय ।
जब तक कछु बोले नहीं, राजसभा बिच जायँ ॥

शास्त्रतुल्य जहँ स्त्रीवचन, दान धनार्जन हेत ।
ऐसे थल को तुरत तज, करै पुराण सचेत ॥

श्राद्ध करै नहिं पितर को, पूजै नहिं सुर जौन ।
और साधुजन सेय नहिं, अधम मनुज है तौन ॥

श्वास वेग तें खाय डर, धरती देवै ठौर ।
ऐसे अहि को मंत्र तें, देवै पुरुष निचौर ॥

शरण में आजाय और उसका पक्ष करने से अनर्थ बढ़े तो उसकी रक्षा नहीं करनी चाहिये । पर इस निर्दोष पक्षी को तो अवश्य बचाना ही चाहिये ऐसा विचार कर श्येन के कथनानुसार कपोत के बराबर अपना मांस काट २ कर तकड़ी में चढ़ाने लगा पर जब कबूतर के बराबर नहीं हुआ तो व्यग्र हो ज्योंही अपना मस्तक काट चढ़ाने लगा त्योंही भगवान् ने आकर दर्शन दिये और यज्ञ की समाप्ति का फल प्रदान कर उसे कृतकृत्य किया.

शिव, केशव, ब्रह्मा, सुमुख, येही चारों देव।
ब्राह्मणादि चारों वरण, करें इन्हीं की सेव ॥
शीतकाल में पांतरै, तरु को सींच कुमार।
ऋतु वंसत में नित्य अरु, ग्रीष्म माहिं दो वार ॥
शीलहीन कुलवंत को, कीजै नाहिं सत्कार।
अरु पूजा कर शूद्र की, यदि वह चरित उदार ॥
श्री, ह्री, धी, कीरति सुमति, वसें देह के माहिं।
मांगत ही निकलें तुरत, या में संशय नाहिं ॥
शुक्ल पक्ष के चन्द्रसम, नृप की भूति बढ़ाय।
न्यायपक्ष अवलम्ब तें, वो मन्त्री यश पाय ॥
शुक्लवस्त्र, दिन का शयन, स्त्रीचर्चा अरु यान।
पलँग और चांचल्य को, तज़ै ताहि यति मान ॥
शुचिमस्तक अरु शुचिचरण, अल्प अशन अरु भोग।
ऋतुमैथुन, सबलनशयन, करै अवशि सुख योग ॥
शुद्धभाव से छात्र जो, विद्या पढ़ना चाय।
उसको सद्गुरु प्रीति से, देने भेद बताय ॥
शूर, विचक्षण, सुंदरी, ये तीनों जहँ जाय!
विन प्रयास ही अन्न धन, तहँ वे सादर पाय ॥
श्लोक श्लोकता तव धरै, साधुसभा जब पाय।
नातरु "ल" उड़जात है, खलजन के ढिग जाय॥ (शोक)
सकल वासना त्याग ही, मोक्ष कहावत भाय।
सो ईश्वर की भक्ति से, ज्ञानीजन ही पाय ॥

सखि ! सुन कौतुक मूढ़पति, मिले होत अस खोड़ ।
भय से मूंदे नयन लखि, मरी जानिगो छोड़ ॥

सच्चा नृप अपराध पर, सुत को देवै दण्ड ।
तातें उसके राज्य में, बढ़े न विघ्न प्रचण्ड ॥

सज्जन इक रँग रहत हैं, सुख अरु दुख के काल ।
जैसा सूरज भोर में, तैसा साँझ भुआल ! ॥

शूद्रवंश में जन्म ले, करते उत्तम काम ।
वे तेजाजी के सरिस, पावें उत्तम नाम ॥

---

* नागोर के पास खड़नाल गांव में तेजाजी का जन्म हुआ था । यद्यपि ये जात के जाट थे, पर नियम और धर्म पालने में क्षत्रियों का सा आचरण रखते थे । एक समय ये अपनी ससुराल (रूपनगर के पास पनेर गांव) गये थे वहां संयोग वश कई दुष्ट लोग भी आपहुंचे और गांव की गायों को बांधकर लेगये । जब सब गांव के लोग इनसे आकर बोले तो तुरन्त ये घोड़े पर चढ़ उनको छुड़ाने के लिये चले । फिर टोले के पास जाकर इन्होंने कहा कि "तुम शूर हो इन दुर्बल पशुओं को मत मारो, ये तो तुम्हारी और हमारी सब ही की रक्षा करनेवाले हैं" जैसा कि:— 'अरिहु दन्त तृण गहहिं ताहि जग मारै नहिं कोइ, हम सन्तत तृण चराहिं वचन उच्चरहिं दीन होइ । अमृतपय नित स्रवहिं वत्स महि थम्भहि ज्यावहिं, हिन्दुहि मधुरन देत कटुक तुरकहिं न पियावहिं ॥ कह नरहरि सुनु शाहवर विनवत गो जोरे करन । केहि अपराध मोहि मारियत मुयेहुं चाम सेवत चरन ॥ इत्यादि वचनों से उन्हें बहुत कुछ समझाया, पर उन्होंने एक भी बात नहीं सुनी । अन्त में इनके और उनके आपस में युद्ध हुआ जिसमें इनकी जीत हुई । पर शरीर में इतने घाव लगे थे कि वे बच नहीं सके । उनकी मृत्यु भादवा सुद दशमी को इस शुभ कर्म में हुई, अतएव राजपूताना वासियों ने उनका नाम चिरस्थायी रखने को उस तिथि का तेजादशमी नाम धर कर त्योंहारों में स्थान दिया है और उस तिथि को कई जगह ठौर मेला भी भरता है.

सज्जन मित्र, सुशील स्त्री, समरथ नृप अरु दास ।
इनको दुख की बात कहि, नर पावत विश्वास ॥

सज्जन तो परिहास के, वचन सदैव निभाय ।
अरु दुर्जन सौ सौ शपथ, खाकर भी नट जाय ॥

सतयुग में परधान तप, अरु त्रेता में ज्ञान ।
द्वापर में परधान मख, है कलियुग में दान ॥

सतयुग के कलिकाल में, कबहुँ न कीजे काम ।
इसी हेतु से भक्त को, कष्ट देत कलि वाम ॥

सत्य, धर्म, उद्योग, धृति, क्षमा शील अरु दान ।
ये उत्तम गुण पुरुष को, अवशि दिलावें मान ।

सत्य कामिनीवृन्द अरु, सत्य विभव जग तोर ।
पै मछली की चालसम, चंचल जीवन ✻ मोर ॥

सपने में फल फूल को, देखै अथवा खाय ।
तो घरमें होवे अवशि, धन की बहुतहि आय ॥

सपने में जिसका मरण, होवै वह तत्काल ।
रोगमुक्त होकर अवशि, पावत है जयमाल ॥

सबको एकहि बात से, यदि वश करनो चाय ।
तो प्रियभाषण को सदा, किया करो चित लाय ॥

✻ आसवश डोलत सुयाको विश्वास कहा, सांसवस बोलै मल मांसही को गोला है ।
कहै पदमाकर विचार क्षणभंगुर यों पानी में के फैन कैसा फकत फफोला है ॥
करम करोर पंचतत्त्वन बटोर जोर जोर के बनायो तऊ पोर पोर पोला है ।
छांडि रामनाम नहिं पैहे विश्राम अरे, निपट निकाम तन चामही को चोला है ॥

सब लोगों की तुष्टि को, नहिं है कोइ उपाय।
अस विचार दृढ़ आनि उर, बुध निज अर्थ बनाय ॥

सब दुख सहनो करत हूं, चतुरानन ! स्वीकार।
पै मूरख को सीख दे, सुनूं न वाकी गार ॥

सबलों से जो भिड़त हैं, होकर मद तें अन्ध।
वे अवश्य रावणसरिस※, रण में पावें बन्ध ॥

सब व्यसनों में दो व्यसन, उत्तम लीजे मान।
पहलो विद्याभ्यास अरु, दूजो हरिगुणगान ॥

सब पच्छी विहरें निडर, समज† लिये बन मांय। († पक्षिगण)
रे शुक ! तू पंजर पर्यो, मीठो शब्द सुनाय ॥

सब बनचर मिलि सिंह को, कब कीन्हों अभिषेक।
पै पद लह्यो मृगेन्द्र को, राखि आप की टेक ॥

सभी पुत्र निज तात तें, अधिक कीर्ति फैलात।
यह मैंने इस वंश में, लखी अनोखी बात ॥

सभा बीच मत जाय नर !, जावै तो सच बोल।
झूठ कहे वा चुप रहे, दोष लगै बेतोल ॥

समरथहू बिन मित्र के, सकै न काज बनाय।
जैसे पावक बिन पवन, तुसहु न सकै जलाय ॥

※ रावण बल के गर्व से माहिष्मती के राजा कार्त्तवीर्य से लड़ने को गया तो रावण को उसने क्रीड़ामृग के समान सहज ही में बांध लिया। अतः बलवानों के साथ लड़ाई नहीं करनी चाहिये.

समय देखि के जो चलै, सो अवश्य सुख पाय ।
देखो अर्जुन * नट बने, गुप्तवास में जाय ॥
समय देखि के जो चले, वही पुरुष कहलाय ।
नातरु पशु अरु पुरुष में, मोहि न भेद लखाय ॥
सरदी, गरमी, प्रीति, भय, निर्धनता, दुबलाइ ।
इनतें रुकि कारज तजै, सो कायर कहलाइ ॥
सर्प डसै उस ठौर पै, तत् क्षण मूतो भाय ।
जिससे विष उतरे तुरत, शारँगधर बतलाय ॥
सरिता जल अरु वृक्ष फल, जिमि परहित में देत ।
तिमि सज्जन भी अतिथि को, पालन करि यश लेत ॥
सरवर ! तू मत कर कभी, राजहंस तें चाल ।
वा विन तोमें आय खल, धोवेंगे पशु खाल ॥
सरिता तोरे बाढ़ने, किये बहुतसे काम ।
पै तट तरु के पात ने, मेट दियो सब नाम ॥
सहदेवी की छाल को, शिर पर देउ बँधाय ।
जिससे ज्वर उतरे तुरत, वैद्यक अस बतलाय ॥
सागर में गाम्भीर्य इक, अरु गिरि में गुरुताइ ।
पै सज्जन में उभय गुण, जिससे लहै बड़ाइ ॥

* अर्जुन यद्यपि बड़ा बली था तो भी उर्वशी का शाप तथा गुप्तवास के नियम को पालन करने के लिये नट के रूप में विराट के यहां रहकर एक वर्ष किसी प्रकार बिताया था । इसी प्रकार चतुर लोग भी समय देख के ही काम किया करते हैं.

साध्वी जो नारी मिले, सुत होवे गुणवान ।
योग क्षेम चलतो रहे, तो घर स्वर्ग समान ॥
साधारण तरु जान कर, सींचि न बाँधी पाज ।
पै अब तोरी गंध लखि, चंपक ! आवै लाज ॥
साधु संग नारेलसम, पीछे हर्ष दिलाय ।
अरु खल को सँग बोर सम, पहिले चित्त रिझाय ॥
साधु सभा के वीच को, सेइय कुटिल भुआल ।
पै खलवेष्टित विज्ञ भी, तजि दीजे तत्काल ॥
साम दान अरु भेद को, चालिसकै व्यवहार ।
तवतक कवहुँ न कीजिये, कष्टदायिनी रार ॥
सारभूत सव शास्त्र की, एक यही है वात ।
ममता तजदो तो सभी, दुख सहसा मिटि जात ॥
सास बहू में प्रीति जिमि, विरले घरमें होय ।
तिमि विद्या अरु सम्पदा, कठिन एक घर दोय ॥
सांग वेद, षट् शास्त्र अरु, स्मृति, पुराण, उपवेद ।
इन सव के भी जीवते, संस्कृत मृत यह खेद ॥
साठी चाँवल उड़दकी, दाल आज्य युत खाय ।
अरु पीवै नित दूध को, तो निर्बलता जाय ॥
साक्षर यदि विपरीत हो, तो राक्षस कहलाय ।
किन्तु सरस विपरीत भी, सरस बन्यो रहजाय ॥
सांसारिक विषवृक्षके, दो अमृतफल जान ।
सज्जन की संगति प्रथम, अपर शास्त्ररस पान ॥

सिंह, व्याघ्र भूखे रहें, पै नहिं पान चबात ।
तस सज्जन भी दुःखमें, धर्म न कबहुँ बहात ॥
सिंह और बकरी पिवें, एक घाटमें नीर ।
अस अँगरेजी राज्य की, साथ करै रघुवीर ॥
स्त्री के लिये न यज्ञ है, जप तप और न दान ।
पतिसेवा ही तें लहै, विष्णु रुद्रको थान ॥
सुख चाहो तो चित्त को, रखो सरल अरु श्वेत ।
देखो जीते देव अरु, हारे असुर अचेत ॥
सुख देवै, दुख को हरै, कीर्त्ति भुवन फैलाय ।
कामधेनु सम सकल सुख, प्रियवाणी दिलवाय ॥
सुत, दारा अरु जाति तें, यदि चाहो सत्कार ।
तो सब छांडि प्रपंच को, संग्रह करु कलधार * ॥
सुत, नारी, धन, धान्, सब, मेरे मेरे मेर † ।
कहते नर अज को लियो, काल बाघने घेर ॥
सुतमुख दर्शन के लिये, माता तजती प्राण ।
पै उसको स्त्रीवचन तें, छोड़ै पुत्र अजाण ॥

---

* मात कहै मेरो पूत सपूत के, बहिन कहै मेरो सुन्दर भैया । तात कहै मेरो है कुलदीपक, लोक में लाज को अधिक बधैया ॥ नारि कहै मेरो प्राण अधार, लेऊं निश दिन मैं जाकि बलैया । कवि गंग कहै सुन शाह अकब्बर, जिनके घरमें है सुपेद रुपैया ॥

† मेरो धन, मेरो गेह, मेरो परिवार सब, मेरो धन माल मैं तो बहुविध भारो हूं । मेरे सब सेवक, हुकम कोइ मेटै नांहि, मेरी युवतिको मैं ही अधिक पियारो हूं । मेरो वंश ऊंचो, मेरे बाप दादा ऐसे भये, करत बड़ाई मैं तो जगत उज्यारो हूं । सुंदर कहत मेरो मेरो करिजौन शठ, ऐसे नांहि जानै मैं तो कालही को चारो हूं ॥

सुधा नीर है ग्रीष्म सें, सुधा शिशिर ऋतु आगि।
भोजन में पायस सुधा, सूनु सुधा बड़भागि ॥
सुन सुत ! प्रियभाषी बहुत, जगमें मिलिहैं तोय।
पै कटु हित के नहिं मिलें, वक्ता श्रोता दोय ॥
सुनो बहुत बोलो अलप, प्रभु आशय अस जान।
दिये कान दो सुनन को, जीभ एक बतरान ॥
सुनके महिमा आपकी, तृप्त भये मम कान।
पै नयनों की जान रुचि, दर्शन कीन्हे आन ॥
सूप तुल्य गुण ग्रहण करि, संपति लहै सुजान।
पै खल चलनी सरिस बनि, भोगै कष्ट महान ॥
सेना ले अबलान की, जग में एक अनंग।
कुसुम बाण तें वेध करि, सबको किये अपंग ॥
सेर पत्र कचनार सें, सोना तोला आध।
रखि गजपुट दो देय तो, भस्म बनै निर्बाध ॥
सेवक शंका करत नहिं, बहुत पुरानो जौन।
उचित होय तो दंड दे, नातरु साधिय मौन ॥
सोय अचेत कुठौर जो, सो निश्चय दुख पात।
सत्राजित * मार्‌यो गयो, शतधन्वा के हात ॥
सोवै निर्भय सिंहनी, इक सुपुत्र को पाय।
पै दश सुत होते हुए, गदही लादी जाय ॥

* एकांत में सोते हुए सत्राजित यादव को मणि के लोभ से शतधन्वा ने मार डाला था; अतः कुठौर में बेसुध साहंकार कभी नहीं सोना चाहिये ॥

क्षमा, सत्य, सख, अध्ययन, दम, अलोभ, तप, दान।
ये आठों धर्माङ्ग हैं, कहत पुकारि पुरान ॥
क्षमा शत्रु अरु मित्र में, यति को भूषण जान।
अरु अपराधी में क्षमा, नृप को दूषण मान ॥
क्षौर कर्म में ग्राह्य हैं, शुक्र तथा बुधवार।
अरु मंगल शनि त्याज्य हैं, कहत पुराण पुकार ॥
ज्ञानी का मिलना कठिन, जहँ तहँ मिलत अजाण।
चिंतामणि खोजत फिरो, तुरत मिलै पाषाण ॥
ज्ञानी जन इक बात में, मुक्ति मार्ग बतलाय।
देखो नृप खट्वांग * को, नारद दियो तिराय ॥

---

* एक बेर बीणा बजाते हरगुण गाते नारदमुनि राजा खट्वांग के पास जा-पहुंचे। राजा ने उन्हें देख प्रणाम कर पूछा कि "प्रभो! बताइये मेरी कितनी आयु शेष है?" इतना सुन योगबल से सोच विचार मुनिराज ने कहा कि "राजन्! दो घड़ी अवशिष्ट हैं". जिस का एक एक लव लाख लाख लाल के बराबर है ॥

सो इस अवसर में सच्चे मन से मंत्रराज का जपकर जैसे:—

दुइ बेर द्वारिका, त्रिवेणी जाय तीन बेर, चार बेर काशी गंग अंगहू नहाये तें।
पांच बेर गया जाय, छः बेर नीमषार, सातबेर पुष्कर में मज्जन कराये तें ॥
रामनाथ जगन्नाथ, बद्री केदारनाथ, द्रोणाचल दश बेर जाय पगधाये तें।
जेते फल होत कोटि तीर्थन के स्नान किये, तेते फल होत एक ओंङ्कार गाये तें ॥

सुनते ही राजाने सब प्रपंचों को छोड़ ऋषि से ज्ञानोपदेश सुन कर ईश्वर के ध्यान में ऐसा चित्त लगाया कि वह अन्त समय की भक्ति से भवसागर पार हो बैकुण्ठ धाम को पहुंचा ॥

श्री मेरी महिषी सहित, जार्ज (५) नरेन्द्र पधार ।
दिल्ली में उत्सव कियो, विधि विस्मय दातार ॥
उसी वर्ष श्रीकंठ की, कृपादृष्टि को पाय ।
शुभस्थान अजमेर में, ग्रंथ रच्यो सुखदाय ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिःपृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे-देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥ ओम् शांतिः शांतिः शांतिः ॥

इति श्रीदधीचिकुलावतंस, गंगवाणाधीशाश्रित, अजमेरा-भिजन, त्रिपाठीत्युपाख्य, पण्डितबदरीनाथात्मज-साहित्योपाध्याय-शिवदत्त काव्यतीर्थ विरचिता शिवसतसई समाप्ता ॥

श्रीरस्तु.

शुद्धाशुद्धिपत्रम् ॥
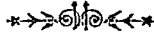
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१७	शूर	दानशूर
७	४	वीछु	विच्छू
७	२१	अंहकार	अहंकार
९	८	धृष्टि	धृष्ट
९	८	कहै	करै
९	१६	बाल्यावास्था	बाल्यावस्था
१०	७	नांहि	नाँहिँ
१०	२१	उसने	कर
११	८	प्रकश	प्रकाश
११	१४	तर्थि	तीर्थ
११	१५	कोई	कोइ
१३	७	अँगूठा	अंगूठा
१५	१५	ते	तैं
१६	१६	सूँड	सुंड
१६	१२	तरुतो	तरुवर
२१	८	माँहिँ	पाँहि
२३	११	प्रीति	प्रीत
२४	१९	सकै	सकें
२५	१६	पावें	पावै
२५	१८	मह्ह	महा
३२	१४	देह	दे
३५	२	पायों	पायो
३५	३	दान	वृथा
३८	१०	ज्ञान	कर्म
४०	९	को	के
४१	२६	होयं	होय
४७	९	कापीस	कार्पास
४७	१४	*	†
५०	६	फंकि	फँकि
५०	१९	लेना	लेना देना
५४	१०	तु	सु
५४	१३	हीं	ही
५४	२१	यथेच्छित	यथेच्छ
५८	१	तूं	तू
६१	९	घृत अरु	अरुघृत
६२	२१	और हाथी ने	हाथीने और
६५	२३	में	मैं
६६	२०	जव	तव
६७	१८	पय	दूध
६७	२३	चवाइये	चवइये
६९	९	करे	करैं
७५	१२	जायँ	जाय
७६	१४	सव	सब
७७	१८	।ह	हिं
८०	१८	उतरे	उतरै

इति ॥

पुस्तक मिलने का ठिकाना :—

त्रिपाठि रामदत्त शर्म्मा, हैडपंडित-

मिशन हाई-स्कूल तथा-सराफा पोल,

अजमेर.